तृतीय अध्याय

डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र

तृतीय अध्याय

डॉ. लाल के मिथक नाटकों में पात्र

हमने इस शोध - प्रबंध के पहले अध्याय में नाटक विधा साहित्य की अन्य विविध विधाओं से महत्वपूर्ण कैसे है यह देखा है। नाटक को काव्यशास्त्रियों ने दृश्यकाव्य कहा है। यह देखने की अनुभूति की प्रक्रियाद्वारा रसास्वादन कराती है। इसीलिये नाटक महत्वपूर्ण है। नाटक देखते समय उसमें पात्रोंद्वारा हमें, कथ्य कथावस्तु, नाटक का उद्देश्य आदि का बोध होता है। नाटक में पात्रों की निर्मिती, चरित्रसृष्टि तत्व बहुत ही कठिन कार्य होता है। नाटककार अपनी सर्जनात्मक शक्तिद्वारा चरित्रसृष्टि करता है।

रचनाकार अपनी कलाद्वारा चरित्रसृष्टि करता है। परंतु नाटक रंगमंचपर प्रस्तुत करते समय उस चरित्र का अपनी भूमिका के साथ एकरूप होना, दर्शकों के साथ रसनिष्पत्ति करना आदि बातें बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। पात्र अगर भावुक है, अनुभवि है तो उसे यह कार्य सहज अंगीकृत होगा। इसलिये पात्रों के सृजनकर्ता को विशेष रूपसे यह ध्यान रखना पड़ता है कि पात्रों को उस भूमिका के लिये चुनते समय यथायोग्य उपाय किया गया है, या नहीं ?

नाटक पढ़ते समय या देखते समय दर्शक के भावानुभूति को उत्तेजित करनेवाला पात्र ही सर्वोत्कृष्ट पात्र कहलाता है। पात्र अपने संवाद, स्वगत, अंतर्द्वंद्व तथा अभिनयमुद्रा द्वारा दर्शकों के हृदयस्थ होता है। एक पात्र दूसरे पात्र से पृथक रहता है, यही उसकी विशिष्ठता है। प्रेक्षक / दर्शक के बुध्दि एवं भावनाको उद्वेलित करना पात्र का सर्वप्रथम कार्य माना जाता है।

वैसे रचनाकर्ता की दृष्टि में सभी पात्र महत्वपूर्ण रहते है। गौण पात्र के अभिनयद्वारा या संवादद्वारा वह भी कभी कभी प्रमुख पात्र से श्रेष्ठ हो सकता है। रचनाकार अपने पात्रोंद्वारा उनके चरित्र को उजागर करता है। अपनी भूमिका के लिये या उसके अभिनय के लिये रचनाकार जिम्मेदार

नहीं रहता, बल्कि वह पात्र जिम्मेदार रहता है। अपने अभिनय द्वारा प्रेक्षक का मनोरंजन या भावनोत्पादन करना ही तो पात्र या चरित्र का मूल उद्देश्य रहता है।

धनवान व्यक्ति अपने धन-सम्पत्ति द्वारा जिस प्रकार कुछ भी कर सकता है, ठीक उसी प्रकार रचनाकार–नाटककार अपने पात्रोंद्वारा नाटक में कुछ भी कर सकता है। पात्र नाटककार की सम्पत्ति कहे तो कोई अत्युक्ति नहीं। रंगमंचपर अभिनय पात्रों द्वारा होता है, अगर रंगमंच को गतिशील रखना है तो पात्रों को गतिशील होना जरूरी है। नाटक का सबसे महत्वपूर्ण तत्व चरित्र-चित्रण ही है।

जब दर्शक नाटक देखते हैं तो उनका परिचय पात्रों से ही होता है। प्रेक्षक के उपर प्रभाव डालनेवाले पात्र ही माध्यम है। उनके संवाद, वार्तालाप, अंग विक्षेप द्वारा ही प्रेक्षकों को कथावस्तु का ज्ञान होता है। रंगमंचपर गतिशील पात्र न हो तो दर्शक नाटक के बारे में गलतें सोचने लगते हैं। पात्रों की गतिशीलता, अभिनयात्मकता, अंगविक्षेप प्रेक्षकों को अपनी जगह बांधे रहनेपर मजबूर करती है। पात्र ही नाटक की संपूर्ण शक्ति मानी जानी चाहिये।

नाटक में पात्र और चरित्रसृष्टि :

नाटक में पात्र और चरित्रसृष्टि का निर्माता स्वयं नाटककार होता है। हमने पिछे देखा हे कि नाटककार खुद अपनी स्वेच्छा से पात्रों की सृष्टि करता है। अन्य साहित्यिक विधाओं से नाटक पृथक है इसका कारणनाटक दृष्टव्य होता है। इसीलिये नाटक दर्शक को लुभानेवाला कहे तो ठीक रहेगा।

भरतमुनि ने नाटक को पंचमवदे कह है। पाँच वेदों का सार नाटक में निहित रहता है। जीवन का सार्वभौमत्व नाटक में निहित रहता है। नाटक में कलात्मकता, ज्ञानात्मकता, नैतिकता, कर्मात्मकता तथा मनोरंजन आदि का समन्वय रहता है। इसप्रकार नाटक की परिधि असीमित है। यह कला जनकला के अंतर्गत आती है इसलिये सर्वश्रेष्ठ है।

नाटक में रसनिष्पति का कार्य तथा नाटक को श्रेष्ठत्व प्राप्त कराने का कार्य पात्र के हाथ में होता है। पात्रों का व्यक्तित्व या उसके चरित्र का व्यक्तित्व उभारने का कार्य नाटककार के हाथ में होता है। पात्रों का परस्पर संवाद भी उनके व्यक्तित्व को उजागर करता है। नाटकसृष्टि की विधा क्लिष्ट है उससे कई गुना ज्यादा क्लिष्ट है पात्र तथा चरित्र चित्रण।

नाटककार के मानसिक संतुलन का चित्रण, उसके परिवेश का चित्रण, उसके पात्रनिर्मिती में दृष्टिगोचर होता है। नाटककार जिस परिवेश रहता है या उसकी विचार प्रणाली होती उसी संदर्भ में

पात्रों का व्यक्तित्व उभरता है। ये पात्र जीवन्त होने चाहिये तभी उस नाटक की कथावस्तु प्रवाहित बन सकती है। पात्रों के कार्य कलाप द्वारा घटनाविन्यास यथास्थित होता है। चरित्र-गठन की सशक्तता नाटकीय पात्रों की विशेषतः उन्ही कार्यों से सम्बन्ध रखती है, जिनकी अभिव्यक्ति की अपेक्षा है।

" नाटक के चरित्र में केवल स्थूल या विस्तृत विवरण के स्थान पर यदि आवेगों तथा सवेगों का संयोग न हो तो पुनः उनका नाटकीय चरित्र एवं नाटकीय व्यक्तित्व दोनों के प्रस्तुतीकरण में शिथिलता या गतिरोध की सम्भावना बनी रहती है। "[1]

दर्शक जब नाटक देखता है, तब उसके मस्तिष्क में पात्र या चरित्र के गतिशील कार्य व्यापार उतने ही गतिशीलता के साथ ग्राह्य होती जाती है जितनी गतिशीलता चरित्र के अभिनय में होती हो।

नाटक में पात्र और चरित्र सृष्टि का इसलिये महत्व है कि, उसके बिना नाटक का रचनाविधान नही हो सकता। भारतीय आचार्यों में दर्शरूपककार धनंजय ने नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने हैं - ' वस्तु, नेता और रस ।'[2] इन आचार्यों ने नेता शब्द का प्रयोग नाटक के चरित्र सृष्टि के लिये ही किया है। और विशेषता नायक को सर्वप्रमुख स्थान देकर ही।

पाश्चात्य मनीषी अरस्तू ने भी नाटक के प्रमुख तत्वों में पात्रों को महत्व दिया है। उन्होंने नाटक में पात्र का महत्व ध्यान में रखकर यह बताया है कि पात्रों का चरित्र चित्रण करनेवाला नाटककार ही उत्तम प्रभाव की सृष्टि कर सकता है। अरस्तू ने त्रासदी के पात्रों के संदर्भ में विचार करते समय यह व्यक्त किया है कि - ' ट्रेजडी का नायक नितान्त अच्छा और निर्दोष व्यक्ति नहीं होना चाहिये। उसके दुर्भाग्य का कारण कोई बुराई न होकर कोई बड़ी भूल या मानवीय दुर्बलता होनी चाहिये। '[3] आमतौर पर भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों ने यह बताया है कि, नाटक का नायक सुशील, धीरोदात्त, इतिहासप्रसिद्ध और भद्र होना चाहिए। लेकिन आज इस विचार में जरूर परिवर्तन हुआ है। आज के नाटक में साधारण वर्ग का पात्र ही सर्वप्रमुख पात्र बन जाता है। नाटककार अपने दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर पात्रों की सृष्टि करता है। आधुनिक नाटक के पात्र अधिक यथार्थवादी होते हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को भी यथार्थवाद की भूमि पर चित्रीत किया जाता है। जगदीशचंद्र माथुर (कोणार्क, पहला राजा), मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस), लक्ष्मीनारायण लाल (सूर्यमुख, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु, इ.) आदि नाटककारों

ने जो नाटक लिखे हैं , वे भले ही ऐतिहासिक पौराणिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं और उनमें आधुनिक समाज की अभिव्यक्ति ही देखने को मिलती है। इसप्रकार आजकल पात्रों के बारे में पुरातन विचारधारा में काफी परिवर्तन हुआ है जो समय की देन है।

आज कल नाटक में कथावस्तु की अपेक्षा पात्रों को ही अधिक महत्व दिया जाता है। मेरीन एलवुड का कथन है कि, ' नाटक में पात्र सृष्टि प्रमुख है, कथावस्तु गौण। '[4]

साधारण नाटक तथा मिथक नाटक की पात्रपरिकल्पना में अंतर :

एक सर्वेक्षण :

साधारण नाटक के पात्र :

नाटक का जन्म ।3 वीं शती माना गया है। नाटक का उद्‌भव उसीकाल में हुआ था। तब नाटक काव्यरूप में लिखे जाते थे। भारतेंदु काल से नाटक का नक्शा ही बदल गया। राष्ट्रीय जागरण, नारी जागरण, तत्कालिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति आदि का चित्रण नाटकों में होने लगा।

भारतेंदु के बाद प्रसादयुग एवं प्रसादोत्तर युग में भी नाटकों की रचना हुयी। प्रसादजी ने तथा अन्य नाटककारों ने अप्रतिम नाटकों का निर्माण किया। उनके पात्र भी सभी तत्वों में खरे उतरने वाले थे। प्रसाद के नाटकों के पात्र ऐतिहासिक तथा प्रसिद्ध थे। जैसे चन्द्रगुप्त, स्कन्धगुप्त, आजातशत्रु विशाख आदि। उनके नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक भले ही हो परंतु वे मिथक नाटक नही कहला सकते। उनके नाटकों में अतीत की पृष्ठभूमि पर अतीत का ही गुणगान किया गया है, जब कि मिथक नाटकों में अतीत की पृष्ठभूमि पर आधुनिकता का गुणगान या छाप या परिणाम वर्णित मिलता है।

प्रसादजी तथा उनके समकालीन नाटककारों ने भारतीय संस्कृति-दर्शन के रक्षा का प्रयत्न किया है। जब भी मिथक नाटकोंद्वारा इनमें परिवर्तन का लक्षण बताया गया है। प्रसादजी के नाटकों में विविध प्रकार के नायक-नायिकाओं का चित्रण उभरा है। परंतु उनके पात्र संस्कृत नाट्यशक्तियों के मतानुकुल है। धनंजय ने नायक के 22 गुण बतायें हैं, जो जादा से जादा प्रसादजी के नाटकों के नायक में दृष्टिगोचर होते हैं।

" प्रसाद के व्यक्तित्व को नाटक के पात्रों के चरित्रों को अंकीत करने में स्पष्ट छाया पड़ी है। दर्शनों के ज्ञान के साथ कवि-हृदय का व्यमिश्रण होने से प्रसाद के सिद्धांतो और आदर्शों में एक ऐसा विलक्षण तारल्य है, जो हमें अन्य नाटककारों में कही नही मिलता है। प्रसादजी ने भारतीय

संस्कृति और इतिहास के सम्यक मंथन के पश्चात् अपने नाटकों के नायकों की सृष्टि की है। "[5]

प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिकता टपकती है। तथा उनके नायक शास्त्रीय मान्यताओं के आधारपर निर्मित किए गए हैं। फिर भी उनके पात्र न तो अतिमानवीय है न अमानवीय वे तो मानवीय धरातल पर खरे उतरें हैं। प्रसादजी के पात्रों का अपना अलग अलग व्यक्तित्व है।

" उनका एक-एक पात्र एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व भी करता हुआ-सा प्रतीत होता है। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, प्रसाद जी के मस्तिष्क में न जाने कितने प्रश्न होंगे, जिनके समाधान के लिए वे कम से पात्रों की सृष्टि करते हुए भी इतने पात्र रच गए जिनकी अधिकता आलोचकों के समक्ष स्पष्टतः परिलक्षित होती है। "[6]

प्रसाद जी पात्र निर्मिती की दृष्टि से पात्रों का वर्गीकरण इसप्रकार करते थे।

पुरूष पात्र	**स्त्री पात्र**
शासक वर्ग	अभिजात्य वर्ग
आचार्य वर्ग	मध्य वर्ग
अधिकारी वर्ग	प्रेमिका वर्ग
विदूषक वर्ग	विलासिनियाँ
व्यवसायी वर्ग	विदेशी
बौद्धभिक्षु तथा पुरोहित वर्ग	
विदेशी पात्र	

प्रसादजी की भाँति हिंदी में ऐतिहासिक नाटक लिखनेवालों में हरीकृष्ण प्रेमि का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने मध्ययुगीन भारत के इतिहास को ध्यान में रखकर हिंदु मुस्लिम एकता की दृष्टि से मौलिक नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में राष्ट्रीय भावना का स्वर गूँज उठा है। रक्षाबन्धन, शिवा-साधना, प्रतिशोध, आहुति, उद्धार, शपथ, प्रकाशस्तंभ, शतरंज के खिलाड़ी, भग्न प्राचिर, कीर्ति स्तंभ, सॉपों की सृष्टि आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। इन नाटकों की पात्रसृष्टि में मुख्यतया इतिहास का आश्रय ही ले लिया गया है। और मुगलकालीन भारत को चित्रित करना ही नाटककारों का प्रमुख उद्देश्य है। ना कि मिथकीय पात्रों की सृष्टि करना है।

उपर्युक्त पात्रों के अलावा ऐसे कई पात्र है जिन्हें किसी भी वर्ग विशेष में वर्गीकृत नहीं

किया जा सकता। प्रसादजी के बहुतांशी पात्र ऐतिहासिक हैं। कहीं कहीं पर कल्पना का भी सहारा लिया गया है। पात्रों का आदर्श रूप ही नाटक में दृष्टिगोचर होता है। उनके पात्र में विविधता है।

पात्रों के विविध वर्गों में बाँट कर या वैविध्यता पाकर भी ये पात्र मिथक पात्र नहीं हो सकते, क्योंकि, मिथक पात्रों के लिए इतिहास या पुराण का प्रतीक मात्र बनाकर उन्हें आधुनिक परिवेश में आबद्ध करके ही प्रस्तुत करना मिथकीयता होती है। प्रसादजी अपने किसी भी नाटक में ऐसा प्रयत्न नहीं करते। मिथकीय पात्र तो पुराण या इतिहास का सहारा मात्र लेकर नये आयाम प्रस्तुत करते हैं। नये परिवेश में पुराने पात्रों का बर्ताव या व्यवहार किस प्रकार हो सकता है इसका कथन ही मिथकीयता है जो आधुनिक नाटककारों में दृष्टिगोचर होता है।

" नए ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों के विषय में श्री देवेन्द्र इस्सार की भी यही धारणा है कि, आधुनिक जीवन की जटिलताओं को पौराणिक कथाओं और पात्रों की माध्यम से प्रक्षेपित करने का प्रयास कई आधुनिक नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। नाटककार इस पात्रों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अतिरिक्त समकालीन सन्दर्भ में इनके मानसिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण करने में सफल हुए हैं। "[7]

मिथक नाटक परम्परा :

ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्र को नये परिप्रेक्ष्य में ढ़ालकर आधुनिकता को उजागर करना ही साधारण नाटक तथा मिथक नाटक में अंतर्दर्शाता है। आधुनिक नाटककारों ने इस सन्दर्भ में बहुत ही मौलिक कार्य किया है। जैसे जगदीशचंद्र माथूर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, भीष्म सहानी तथा लक्ष्मीनारायण लाल आदि। हिन्दी नाटक साहित्य में मिथक नाटकों की परंपरा इसी सिलसिले से जारी है।

जगदीशचंद्र माथुर

नाटकों के मिथकीय प्रयोग में माथूरजी केवल अग्रणी नहीं रहे, अपितु विशिष्ठ नाटककार के रूप में उभरे हैं। बदलते युग में प्रयोग की अनिवार्यता स्वीकृत है। ये मिथक नाटक केवल साधनमात्र नहीं तो ये साध्य भी बन चुके हैं। नये नाटककारों ने मिथक को कल्पनाजाल से निकालकर यथार्थ जाल में बुनने का प्रयास किया जो सफल साबित हुआ। माथूरजी का जन्म खुजा के पास एक गांव में हुआ। उनके नाटक ' कोणार्क ' तथा ' पहला राजा ' विशिष्ठ मिथकीय प्रयोग सिद्ध हुए हैं। नाटककार ने

यथासाध्य ऐतिहासिक पात्रों के प्रति अतिरिक्त सावधानी बरती है।

' कोणार्क ' के पात्र राजा नरसिंहदेव, कलाकार विशु, उसका पुत्र धर्मपद अपने अपने चारित्रिक व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। विशु तथा धर्मपद आदर्श कलाकार है तो नरसिंहदेव आदर्श राजा है। विशु जो एक घायल प्रेमी है, उसे पत्नि शृंगार का अभाव ताप दे रहा है। यह ताप केवल उसका व्यक्तिगत दर्द है। विशु अपनी प्रेमिका को बदनामी के डर से छोड़ कर आया है, यही दर्द उसे बार-बार कुरेदता रहता है। उसे लगता है कि यह विरह की आग राख हो चुकी, परंतु जब उसके सामने धर्मपद आता है तो यह राख ज्वाला का रूप धारण करती है। विशु तो यथार्थ से पलायन कर चुका परंतु धर्मपद उसी के प्रायश्चित में जी रहा है। धर्मपद अपने राजा के प्रति पूर्णरूप से एकाकार हो चुका है। उसे अपने अतीत या भविष्य की चिंता नहीं। वह तो माँ और पिता की पीड़ा से परावृत्त होकर रचनात्मक विद्रोह का रूप लेकर राजा नरसिंहदेव को सहाय्य करता है। पिता-पुत्र की कथा को उजागर करने से पहले ही विध्वंस की घड़ी आ चुकी। जब विशु को पता चलता है कि धर्मपद उसका पुत्र है तो वह अपने सहकारी से कहता है -

" सोमु, कैसे उसे बताऊँगा ? मुझे तो वह जानता नहीं, पर जान लेने पर क्या सोचेगा वह ? - शायद ... शायद (विकलमुख) ओह ! सोमु !! बरसों गुँफा अन्धेरे के बाद यह बेदर्द उजाला क्या मुझे अंधा बनाकर रहेगा ? "[8] पिता पुत्र का भिन्न स्तर तुरन्त नजरों के सामने उभरता है। विशु प्रधान शिल्पि है, परंतु परम्परा के अनुसार धर्मपद उसकी अगली कडी नहीं सिद्ध हुआ है। धर्मपद को पिता के मोह से राजा का कर्तव्य अधिक श्रेष्ठ लगता है। उसे यथार्थ से पलायन करना मंजूर नहीं। उसके टुकडे, टुकडे हो जाते हैं, पर वह कालजयी कलाकार सिद्ध हुआ है। चालुक्य, अपने आप को महाराज का सेनापति नहीं महाराज समझता है, परंतु धर्मपद उसका डटकर विरोध करता है। जान गवाँकर भी कोणार्क की रक्षा करना चाहता है।

माथूर जी का नाटक ' पहला राजा ' भी पौराणिक है। महाभारत और पुराणों से लिये गयी कथावस्तु मिथकीय स्त्रोतों से अपूरित है। अंगतथा सुनीथा का पुत्र वेन ने राज्यभार सँभाला पर वह ब्राह्मण एवं मुनियों पर अत्याचार करता था। मुनियों ने अपने मंत्रों से उसे मारकर पृथु को अपना राजा स्वीकार किया। पृथु ने धनुष की कोटि द्वारा धरती समतल की। पृथु ने ऐसे कार्य किए जिससे ऋषिगण संतुष्ट हो गए। पृथु के 99 यज्ञ पुरे हो गये। परंतु सौ वे यज्ञ को इन्द्र ने पुरा नहीं होने दिया। कहा

अब उसे अनुष्ठानों की जरूरत नहीं। पृथु ने आर्यों के जीवन में तीन प्रकार के परिवर्तन किये। राजनीति व्यवस्था, आर्येतर जातियों से संपर्क बढ़ाना तथा कृषि व्यवस्था में परिवर्तन। पृथु ने ये सब कार्य पृथ्वी अथवा उर्वी के सहयोग से किये। इसमें सुनिथा संघर्ष मे फँसी हुयी आधुनिक युग की नारी है। उर्वी धरती का प्रतोक है। प्रत्येक पात्र को प्रतिक के रूप में उभारा है। इस नाटक से माथूरजी ने पृथु के माध्यम से पंडित जवाहरलालजी की समस्या को नाटकीय रूप देने का प्रयास किया है। पृथु (जवाहरलाल) पुरूषार्थ और परिश्रम के प्रतिक है जो स्तुति और खुशामत को घातक समझते हैं। पुरूषार्थ के दो साथी - कर्म और काम - का समन्वय करके अपना कार्य पृथ्वी द्वारा पूरा करते हैं। अपने तपस्या के माध्यम से उन्होंने पृथ्वी पर परिवर्तन करके समाधान की तथा सुख की निर्मिती की है। ऋषियों का चरित्रांकन करते समय शुक्राचार्य को कूटनीतिज्ञ के रूप में उभारा गया है। पृथु को अपने वचनों में आबद्ध करके उन्होंने अपना मूल रूप - मुखौटा धारी रूप से जाज्वल्य बनाया है। उनमें सत्ता का मोह दिखाया है। यद्यपि पृथु को निषाद रहित सत्ता का नेतृत्व आबद्ध नहीं लग रहा था फिर भी राजा की केंद्रिय धुनी मुनियों के हाथ में होने के कारण पृथु असहाय्य था। कवष के प्रति पृथु को अपार करूणा है। - ' (कवष की ओर मुड़कर) तुम मेरे साथ रहोगे न ? ... चाहे जो हो ? ... चाहें मैं, तुमसे धोखा भी करूँ ? '[9] प्रजा के अतिरिक्त राजा भी कई कारणों से दु:खी है। राजा के पूरे प्रयास के उपरान्त जनता दुखी रहती है। राजा ने कवष द्वारा आर्य-अनार्य की संस्कृति का सामंजस्य कराया। आधुनिक समस्या का हल करने के लिए माथूरजी ने नाटक की निर्मिती की है।

माथूरजी के बाद आधुनिक नाटककारों में नाम आता है - धर्मवीर भारती - उनका नाटक ' अन्धायुग ' बहुत ही चर्चित रहा। महाभारत के उत्तरार्ध को आधार मानकर इसकी रचना हुयी है। नाटक का मेरूदन्ड श्रीकृष्ण है, परन्तु उसकी आस्था को गान्धारी तथा बलराम के संवादों ने तोड़ा है। नाटककार ने प्रथमत: कृष्ण की आस्था को तोड़कर सत्याग्रही विदुर, सत्याश्रयी युयुत्सु और दिव्य दृष्टा संजय जैसे चरित्रों को उभारा है। विदुर कौरवों का खून नहीं परन्तु युयुत्सु कौरवों का खून था। परंतु युयुत्सु खून से ज्यादा महत्व सत्य को देता था। वह तो अपने आप को घृणित, मातृवांछित पाकर भी धन्य समझता है। संजय तो पट्टियों के धूरीपर आधारीत है, जो महत्वपूर्ण भी नहीं और महत्वहीन भी नहीं। अन्धायुग कृष्ण एक ओर प्रभु एवं परम् परात्पर होकर भी अन्धायुग के पक्षधर है। पांडवों ने अपने आदर्शों के प्रति सजगता नहीं रखी और मर्यादा को तोड़ दिया है। श्रीकृष्ण भी मानवी धरातल पर

स्थित है। बलराम तथा गान्धारी कृष्ण की आस्था को तोड़तें हैं तो विदुर, संजय, युयुत्सु आदि कृष्णों की आस्था के सूत्रमात्र है। विदुर उसकी आस्था तोड़ना नहीं चाहता, आस्था को तोड़ना पाप मानता है।

" मेरा स्वर संशय ग्रस्त है, क्योंकि लगता है, कि मेरे प्रभु
उस निक्कमी धुरी की तरह है जिसके सारे पहिये उतर गये हैं।
और जो खुद घुम नहीं सकती - -
पर संशय पाप है, और पाप नहीं करना चाहता। "[10]

नाटक का प्रत्येक पात्र अपने चरित्र को पूर्ण रूप से उभारता है। नाटक का पात्र अपने से बाहर आकर विचार करता है। इस नाटक का धर्म ही चरित्रिक बनकर उभारा गया है। कृष्ण का निष्काम कर्मयोग उलझकर रह गया है।

' मोहन राकेश ' जी का ' आषाढ़ का एक दिन ' तथा ' लहरों के राजहंस ' कालीदास और महात्मा बुद्ध की जीती जागती तस्वीर है। जीवन की गतिमान परम्परा तथा विकसनशील परम्परा को उभारा गया है। व्यक्ति के चारों ओर का गतिमान जीवन का प्रतिबिंब उभारा गया है। चरित्र की आस्था परम्परा को तोडकर उसे मिथक की आधुनिकता की श्रेणी में रखना ही नाटककार का उद्देश्य है।

" डी प्रेमपति का यह कथन सम्भवतः मेरी धारणा की पुष्टि करना नजर आता है - मोहन राकेश ने कवि कालिदास को प्रतीक मान लिया सृजन का। वह प्रतीक इतना स्थिर, जड़, अपरिवर्तनशील बन गया की नाटक को इससे कोई गति नहीं मिली। महापंडित राहुल ने कालिदास को राजाओं की स्तुति गानेवाला दरबारी कवि कहा, जब कि अन्य आलोचकों ने कालिदास में विकास देखा। कालिदास प्रारंभ में जो था, कालानन्तर में नहीं था। "[11] कालिदास के कवि चरित्र को उभारने की बजाय उसको दरबारी गानेवाला के रूप को उभारा गया है। वास्तव में कालिदास उच्च कोटि के कवि थे। उन्होंने कितनेही नाटकों का सृजन किया है। मल्लिका की मूलधुरी कालिदास की रथचक्र को जोड़ दी है। मल्लिका का चरित्र स्वतंत्र रूप में नहीं उभारा, वह तो खंडित व्यक्तित्व की भाँति बिखर-सा गया है। जिसका कोई अन्त नहीं दिखाया गया है। ' लहरों के राजहंस ' का बुद्ध को भोगकामना के विकर्षण में उभारा गया है। नाटक के नायक महात्मा बुद्ध अर्थात् सिद्धार्थ है -सुन्दरी अपने व्यंग्यपूर्ण संवाद द्वारा इसका निष्कर्ष देती है जो सर्वथा प्रतिकूल है। नाटक में सुन्दरी पूरी जड़ता

को विखण्डीत करती है क्योंकि वह स्वयं ही अपनी नौकाओं को आग लगा देती है। सुन्दरी तो निवृत्ति के विरूद्ध प्रकृति का एक आक्रोशपूर्ण अभियान है। नन्द तो अपनी केंद्रिय धूरी में महात्मा बुद्ध का छायारूप है। नाटक के पात्र मानसिक तनाव के नीचे दब से गये हैं। ये नाटक ऐतिहासिक मिथकता पर उजागर हो गए है। परन्तु मानसिक तनाव तथा अंर्तद्वंद्व किसी सामान्य नाटक का भी दृश्यमान भाग हो सकता है। आधुनिकता के विषय में आज का प्रत्येक व्यक्ति तनावपूर्ण वातावरण में तथा किसी न किसी आकांक्षा में ही अपना जीवन बीता रहा है। बुद्ध तो कर्मकाण्डों के प्रति अंधविश्वास को मिटाने के लिये सानाजिक दोषों का निमूर्लन के लिये तथा पतनशील संस्कृति के संवेदन के लिए बौद्धत्व प्राप्त करते हैं। केवल राजमहलों की विलासिता मात्र त्यागना उनका उद्देश्य नहीं था। जीवन के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण उनके बुद्ध बनने के लिए महत्वपूर्ण था।

' सुरेन्द्र वर्मा ' आधुनिक नाटककारों में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का पुर्नमूल्यांकन करनेवाली नाटककारों में से थे। मोहन राकेश के लेखन की छाप इनपर पड़ी है।

" सेक्स उनके नाटकों का केंद्रिय स्वर है। यद्यपि अपवाद रूप में तत्कालिन राजनीतिक और व्यवस्था में छटपटीत व्यक्ति-मन के द्वंद्वों को भी उन्होंने प्रासंगिक अभिव्यक्ति दी है लेकिन उसका क्षीण स्वर सैक्स की बुलन्द आवाज में दब गया है। "[12] उनके रचना संसार में भोगवादी दर्शन हुआ है। जिसके माध्यम से पुरूष पात्र एक से अधिक नारीयों को भोगना चाहता है। और स्त्री चरित्र कई-कई पुरूषों का संसर्ग चाहती है। उनका नाटक ' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक ' के सभी पात्र अभिजात्य वर्ग के हैं परन्तु गहराई से देखनेपर वे सामान्य व्यक्ति ही नजर आते हैं। ओक्काक तथा शीलवती का चरित्र काम-वासना के माध्यम से उभारा यौन संघर्ष ही है। ओक्काक की पीड़ा यौन-सम्बन्धों में पत्नि की तृष्टी करने में असमर्थ व्यक्ति की पीड़ा दायक त्रासदी है। तो शीलवती के माध्यम से नाटककार पतनशील अमरीकरन संस्कृति के तहत यौन-स्वच्छंदता और नारी मुक्ति का स्वर अपनाना चाहते हैं। उनका ' आठवाँ सर्ग ' भी राज्याश्रय की समस्या पर आधारित है। शिव-पार्वती के विलास पर आधारित नाटक अश्लिल रूप में उभरा है। मिथक जातीय संस्कृति के आदर्श और मूल्यों के संवाहक होते हैं। मिथकीय पात्रों की निर्मिती के समय उन्होंने उशृंखलता को बढ़ावा दिया है। ये पात्र अपूर्णता का आक्रोश करके अपना व्यक्तित्व खो देते हैं। लोक आस्था को आव्हानित करके स्त्री-पुरूष के भावनिक संबधों को बढ़ावा दिया गया है। भारतीय नारी को अपने

अंतर्गत जीवन के प्रसंगों का प्रदर्शन स्वीकार्य नही है, जो कि पार्वती माँ द्वारा दिखाया गया है। यह बात पूर्ण रूप से अनुकुल्य नहीं हो सकती।

' भीष्म सहानी ' संघर्षशील सामाजिक चेतना के रचनाकार है। उनके नाटक ' हानूष ' तथा ' कबिरा खड़ा बाजार में ' ऐतिहासिक तथा काल्पनिक नाटक है। " हानूष का परिवेश भारतीय नहीं फिर भी कलाकार की संघर्षशील चेतना मानवीय संवेदना के धरातल पर किसी भी देश और काल में धटित होकर देशकाल निरपेक्ष बन सकती है। ' हानूश ' ऐतिहासिक नही लगभग काल्पनिक है, फिर भी उसकी रचना में नाटककार चेकोस्लोव्हाकिया में प्रचलित किवदन्ति से आन्दोलित हुआ। "[13] पात्र भी पूर्ण रूप से पाश्चात्यों के मायने पर उभरे हैं। ' कबीरा खड़ा बाजार में ' कबीर का व्यक्तित्व आजतक भारतीय जनमानस पटलपर उभरा है। कबीरा जाती-भेद को न माननेवाला व्यक्ति है।

" कबीर के कवित्व , गाने वाला अन्धा भिखारी धर्म और सत्ता के दृश्यकों की मार झेलनेवाला सामान्य व्यक्ति है, जिसकी हत्या द्वारा धर्म और शासन की दुरभिसन्धि सर्वसामान्य में आतंक फैलाने को साजिश स्थायी है। महन्त-मौलवी संकीर्ण धर्मोन्माद एवं साम्प्रदायिक शक्तियों के प्रतीक है और नगर कोतवाल के चरित्र में वर्तमान अफसरशाही रचना के संकेत सूत्र छिपे हैं।"[14] उन्होंने अपने नाटकीय कौशल्यद्वारा पात्र प्रसंगों की पुनर्सृष्टी करते समय वर्तमान स्थितियाँ भी उभरकर आयी है। उनका नाटक ' माधवी ' में नारी की प्रताड़ता उभरकर आयी है। वह ययाती की पुत्री तथाकथित प्रियकर गालव की प्रेयसी तथा गालव के पुत्र को उधार लेनेवाली वासनापूर्ण पति के जाल में फँसी हुयी औरत है। माधवी को भयानक दुष्कचक्रों में फँसानेवाला है गालवी। गालव का स्वभाव बहुत ही हटी है, जिसका परिणाम माधवी को भोगना पड़ता है। मिथकीय परिवेश और चरित्रों के उपयोग द्वारा नाटककार ने सजीव, प्रासंगिक और आकर्षक रूप को संवेदनापूर्ण रूप से उभारा है। पुरूषों की नजर माधवी पर केवल उपयोगिता का माध्यम मात्रतक सीमित है जो सर्वथा त्याज्य है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल मिथकों के रहस्यों की सही समझ रखनेवाले नाटककार है। कुल मिलाकर उनके सात मिथक नाटक है। सूर्यमुख, यक्षप्रश्न-उत्तरयुद्ध, नरसिंह कथा, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु तथा एक सत्य हरिश्चंद्र । उन्होंने आज के मनुष्य की जटिल जीवन स्थितियों, विसंगतीयों एवं मूल्यगत संकटों को रेखांकित करके जीवित चरित्रों को उभारा है, साथ साथ मिथकों के प्रतीक चरित्रों

को अधिक समर्थ बनाया है।

" व्यक्ति आकांक्षा और आधुनिकता की झोक में उन्होंने भारतीय मिथकों द्वारा आयातीत-हासमान संस्कृति को ही सम्प्रेषण किया है। "[15] ' सूर्यमुख ' का नायक प्रद्युम्न एक शरत " व्यक्तित्व का होकर वेनुरती उपहासित। फिर भी दोनों को किसी की परवाह नहीं। श्रीकृष्ण प्रद्युम्न को बार-बार डराता रहता है जो मृतक है। यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध के पाँचों पांड़व भिन्न रूप में उभरे हुए तो उनको उकसाते हैं यक्ष तथा विदूषक। पांड़वों को आधुनिक रूप में उभारकर उन्हें स्वार्थी, अहंकारी तथा बुद्धिहीन के रूपों में प्रस्तुत किया है। ' नरसिंह कथा ' का प्रल्हाद भी अभिशप्त व्यक्तित्ववाला है। जिसे समाप्त करना चाहता है हिरण्यकशिपु, परन्तु अंत में हिरण्यकशिपु ही समाप्त हो जाता है। ' कलंकी ' का अवधूत वास्तव में प्रेतात्मा है। जो हेरूप को मृत्युदंड देता है केवल उसके अत्याचार का विरोध करने पर। ' मिस्टर अभिमन्यु ' का राजन राजनीतिक चक्रव्युह में फँसकर अपनी आत्मा को मार डालता है। पिता तथा पत्नि की हट के लिए अपनी आत्मनिष्ठा को तिलांजली देता है। ' एक सत्य हरिश्चंद्र ' का लौका जाति-पाति विरोधी आन्दोलन खड़ा करके मुखिया देवधर को डटकर विरोध करता है। स्वर्ग जाने की बजाय धरती पर रहना मंजूर करता है। और जाति-पाति भेद मिटाकर समन्वय स्थापित करता है।

डॉ. लाल एक प्रयोगशील रचनाकार है, पौराणिक प्रसंग तथा चरित्रों को आधुनिक चेतना में सम्वाहित किया है। मूल पात्र के बदले मिथकपात्र उभारकर नवीनतम सफल प्रयोग सिद्ध किया है। वर्तमान अनास्थावादी व्यक्ति धर्म से विन्मुख करके व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट करता है।

डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र :

अबतक हमने हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रमुख मिथक नाटककारों के साधारण पात्र तथा मिथक पात्र परिकल्पना के विषयक में विचार-विमर्श किया। अब डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के मिथक नाटकों के प्रमुख पात्रों के विषय में चर्चा करेंगे। उनके मिथक नाटक है - सुर्यमूख, यक्षप्रश्न, उत्तरयुद्ध, नरसिंह कथा, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु तथा एक सत्य हरिश्चंद्र।

महाभारतकालीन नाटक : सूर्यमुख, यक्षप्रश्न, तथा उत्तरयुद्ध।

।) सूर्यमुख :

सूर्यमुख नाटक महाभारत के युद्ध के उपरान्त द्वारिका में जो राजनीतिक परिस्थिती थी,

उसपर वर्णित है। इस नाटक में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थिती का वर्णन मिलता है। इस नाटक के पात्र इसप्रकार है -

प्रद्युम्न - कृष्ण-रूक्मिनी का पुत्र।

रूक्मिणी - कृष्ण की पत्नी।

बभ्रु - कृष्ण का पुत्र।

साम्ब - कृष्ण का पुत्र।

जरा - राक्षस।

व्यासपुत्र - गुरूपुत्र।

दुर्गपाल - रक्षक।

आहुकी - दासी।

परिचारिकाए

वेनुरती - श्रीकृष्ण की अंतिम पत्नी।
तथा प्रद्युम्न की प्रिया।

संगीकर - अर्जुन।

अन्य पात्रों में सैनिक, वृद्ध तथा कुछ भिखारी।

प्रद्युम्न :

' सूर्यमुख ' नाटक का प्रमुख पात्र है प्रद्युम्न। जो कि द्वारिका के राज्य का उत्तराधिकारी भी है। प्रद्युम्न का चरित्र एक युवक तथा प्रेमी की हैसियत से उभारा गया है। प्रद्युम्न के भाई - बभ्रू तथा साम्ब ही उसके शत्रु है। इस शत्रुत्व का कारण है उनकी अंतिम माता वेनुरती तथा प्रद्युम्न का अवैध प्रेम। द्वारिकावासी, रूक्मिनी तथा अन्यपात्र भी इस प्रेम को नीतिबाह्य, परम्पराबाह्य मानते हैं। - पाप मानते हैं। समाज की राजनीति की दृष्टि में वह द्वारिका के राजसिंहासन को जतन करनेवाला जिम्मेदार पुरूष है परंतु वह तो श्रीकृष्ण की अंतिम पत्नी - वेनुरती - को पहले नजर में प्यार करने लगा। पागलों की भाँति वह उसे चाहता है। कहता है -

' प्रद्युम्न : हे ईश्वर ! यह निर्दोषमुख देखकर मैं इतना शक्तिहीन क्यों हो जाता हूँ। मेरी आँखों के सामने और कुछ नहीं सूझता। सारी दिशाओं में कुछ गूँजने लगता है। '[16]

कितनीही बार वह वेनुरती को अपराधिनी मानता है, परंतु उसका मुख देखते ही पिघल जात है। पूरे द्वारिका से विरोध करता है, परंतु वेनुरती से अपार प्यार करता है। उसके लिये अपना पूरा जीवन अर्पित कर देता है। प्रजा वेनुरती को दोषी ठहराती है, परंतु प्रद्युम्न सारा दोषारोपण अपने उपर लेता है। अपने आपको दोषी कहकर अपने अंतर्द्वंद्व को व्यासपुत्र के सामने खोलकर रखता है। " प्रद्युम्न - जीवन इतना सरल नहीं है। (रूककर) सभी सोचते हैं, सारा कारण अकेली वही वेनुरती है, पर सच यह है कि, मूल मैं हूँ। और मेरे इस प्रत्यक्ष मूल में भी पता नहीं और कितना क्या क्या है ? एक द्वारिका समुद्र तट पर दुसरी द्वारिका मेरे भितर, मन के भयानक समुद्र में डूबती हुई। "[17] प्रद्युम्न को आत्मसाक्षात्कार कराने के लिये उसके कर्तव्य भावना को जगाने के लिये वेनुरती नागकुण्डी की पहाड़ी में - जहाँ प्रद्युम्न को आत्मनिर्वासित किया गया है - वहाँ जाति है। उसे समझाती है। प्रद्युम्न द्वारिका नगरी में घटित वारदाते सुनकर वापस चलने को तैयार होता है। व्यासपुत्र तथा साम्ब आदि प्रद्युम्न को वेनुरती के विरूद्ध भडकाते हैं, फिर भी उसके मन में वेनुरती के प्रति प्यार ही उमड आता है। प्रद्युम्न अपने आपसे विरोध करता है। अपने पिता का विरोधी होकर भी पिता के विरूद्ध एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं। कहता है, उनकी मर्यादा के विरूद्ध में एक भी शब्द सुनने को तैय्यार नहीं। पिता के प्रति अपार श्रद्धा तथा अपार प्यार उसके मन में भरा है। वह अपने मनपर काबु नहीं पा सकता जो वेनुरती को बेहद चाहता है। अपना पिता भी वेनुरती को चाहता था यह बात उसे जरा के माध्यम से मालूम हो गयी तो वेनुरती को टोकता रहता है। कभी - कभी अपने आप की बर्त्सना करता है, अपने पिता को अपने तथा वेनुरती के बीच एक लकीर सी मानता है। अपने आपको चक्रवाक संबोधित करता है, क्योंकि वह वेनुरती से अपार प्रेम करने के बावजूद भी नहीं मिल पाता। वेनुरती पूर्ण रूप से प्रद्युम्न के उपर छा गयी है यह बात उसे मालूम है।

प्रद्युम्न संगीकर तथा सैनिकों की बाते सुनकर अपने आपको कोसता है। उसने जो प्रेम किया है उसके लिये दंडित होना स्वीकार्य करता है। परंतु प्रेम को त्यागना नहीं चाहता। उसके मन में पिता का भय छिपा है, परंतु फिर भी वेनुरती से प्यार करता है। वेनुरती के पास जाते समय किसी की छाया पाकर तडपता है।

प्रद्युम्न अगर सामान्य नाटक का नायक होता तो वह वेनुरती से इतना उजागर प्यार नहीं जता सकता, परंतु प्रद्युम्न को मिथक पात्र बनाकर आधुनिकता को प्रस्तुत किया गया है। सामान्य नाटक का पौराणिक या ऐतिहासिक पात्र बहुत ही सीमित परिवेश में अपना जीवन बीता सकता है। परंतु

प्रद्युम्न को डॉ. लाल ने मिथक पात्र - मिथकीय संवेदना द्वारा प्रस्तुत कियाहै। डॉ. लाल ने इसे एक खंडित पात्र की दृष्टिी से भी प्रस्तुत किया है। जिसका पर्यवसन मृत्यू में होता है। प्रद्युम्न का प्यार अवैध होने के कारण जन-सामान्य को तथा द्वारिका वासियों को स्वीकार्य नहीं, इसलिये डॉ. लाल को प्रद्युम्न को मार डालना पड़ा। डॉ. लाल कोई नया आदर्श स्थापित करके परंपरा को तोडना नहीं चाहते थे। परंपरा के विरूद्ध अगर प्रद्युम्न - वेनुरती का प्यार पनपा तो उसका नतीजा केवल विनाश मात्र था। प्रद्युम्न का प्यार अगर सर्वसम्मत नहीं है तो उसे समाप्त होना जरूरी है। प्रद्युम्न का मृत्यू दिखाकर डॉ. लाल ने सही कदम उठाया है। परंपरा कालान्तर तक बनी रहती है और ऐसी परम्परा का उपयोग नहीं जो जनसामान्य को स्वीकृत नहीं। तत्कालीन प्यार समाज का विरोध कर सकता है, परंतु ऐसा प्यार परम्परा स्थापित नहीं कर सकता। परंपरा को तोड़ना ही पूरे विश्व कौं विरोध करना है। परंपरा संस्कृति का आदर्श प्रस्थापित करती है, परंतु संस्कृति को तोड़नेवाला या उसके विरूद्ध वर्तन करनेवाले प्रेम को समाप्त करना या प्रेम करने वालों को समाप्त करना ही नीति है। डॉ. लाल ने प्रद्युम्न वेनुरती के अलौकिक प्रेम द्वारा नया आदर्श प्रस्थापित करने का प्रयास किया परंतु ऐसा प्यार दीर्घकाल तक नहीं चल सकता। यह बात स्वीकार करके ऐसा प्यार करनेवालों को समाप्त कर दिया है। ऐसा अवैध प्यार इतिहास नहीं बना सकता। इतिहास तो सत्याधारित होता है, इतिहास में कल्पना-भावना का कोई स्थान नहीं। प्रद्युम्न केवल अपने प्यार में - अपने प्यार के लिये जीना चाहता है। उसे द्वारिका नगरी की अपने वंश की पर्वा नहीं, अपने प्यार पर सबकुछ कुर्बान करके वह केवल एकतर्फी जीवन बीताना चाहता है। परंतु डॉ. लाल ने उसे समाप्त करके सारा झंझट मिटा दिया है।

वेनुरती :

सूर्यमुख का दूसरा महत्वपूर्ण पात्र है - वेनुरती । वेनुरती द्वारिका में श्रीकृष्ण की अंतिम पत्नी बनकर आई, परंतु द्वारिका में राजमहल में प्रवेश करते समय उसका दृष्टांत - साक्षात्कार प्रद्युम्न से होता है और दोनों को परस्पर पहली नजर में प्यार हो जाता है। दोनों को भी आपस के रिश्ते का पता नहीं था, ऐसी स्थिति में जो प्यार हुआ उसे अवैध कैसे कहा जा सकता है। क्या प्रेम करना पाप है ? वह पहली नजर में ही प्रद्युम्न की हो चुकी थी। " वेनु - विश्वास करो, तुम्ही केवल तुम्ही मेरे प्रथम और अंतीम हो। सुनो - मेरे प्रियतम। मेरी ओर देखो। इस महल में पाँव रखते ही, घूँघट उठाते ही सबसे पहले तुम्ही को देखा था। '[18] वेनुरती उसी क्षण समर्पित हो गयी थी। वेनुरती के

पहले और अंतीम प्रेम का रूप था प्रद्युम्न। जीवन के अन्ततक जीने का सहारा ही था प्रद्युम्न। उनका प्रेम सारी दुनिया से न्यारा है यह बाताती है -

" वेनुरती - हमारे कल्पवृक्ष का मूल गगन में है, लोग इसे उल्टा समझते है, पर यहां कही कुछ भी उल्टा-सीधा नहीं। मैं जन्म जन्मान्तर से तुम्हारी हूँ। "[19] केवल अपना यह जीवन ही नहीं, जनम-जनम तक वह प्रद्युम्न की रहना चाहती हे। सारे नगर का विरोध सहन करके भी प्रद्युम्न के साथ रहना पसंद करती है। वह अपने प्रेम को उच्च स्तर देना चाहती है -

" वेनुरती - रचना करनी होगी उस शक्ति की, जो यह सिद्ध करेगी कि हमारा प्रेम जीवनधर्मी, निष्कलंक है। '[20] प्रद्युम्न को बार बार यही समझाना चाहती है कि वह उससे अपार प्यार करती है। श्रीकृष्ण की पन्ति होने में उसे कोई दिलचस्पी नहीं। प्रद्युम्न उसे बार-बार उकसाता है कि वह श्रीकृष्ण की प्रिया है, परंतु वेनुरती यह बात स्वीकार नहीं करती। कहती है, मेरा उनसे कोई संबंध नहीं, श्रीकृष्ण उसकी तरफ आंख उठाकर नहीं देखते थे। प्रद्युम्न ही उसके लिये पहला पुरूष तथा अंतिम पुरूष था। प्रद्युम्न वेनुरती की ऐसी बातों में अपने आप को खो देता था। उसे कुछ भी नहीं सूझता था। वह अपने प्रेम की किसी से तुलना नहीं करना चाहती। उनका प्रेम समझने की समझ हर सामान्य में नहीं है। वह अपने प्रेमी की प्रतिक्षा हर संध्या तथा रात के समय करती है। परंतु जब प्रद्युम्न नहीं आता तो श्रीकृष्ण की परछाई उसे डराती रहती है। घायल श्रीकृष्ण उसे बार-बार सताता रहता है। वेनुरती भयभीत-सी रहती है, पर प्रद्युम्न की उपस्थिति में वह सारे गम भूला देती है और अपने आपको समर्पित करती है। पर भयभीत वह हमेशा रहती है।

जब द्वारिका का युद्ध प्रारंभ होता है और प्रद्युम्न लड़ाई के लिये चला जाता है, तब अर्जुन यदुकुल की सारी स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर जाता है, वेनुरती जाने से इन्कार करती है। परंतु रूक्मिनी उसे जबरदस्ती ले जाती है। अर्जुन, दुर्गमला तथा वृद्ध उसे सहारा देने की कोशिश करते हैं। प्रद्युम्न-वेनुरती को अलग करना रूक्मिनी का उद्दिष्ट था। परंतु वेनुरती अंतीम क्षण तक उसे भूला नहीं पाती। 'प्रत्येक क्षण प्रद्युम्न की याद में तडपती रहती है। कहती है -

" वेनुरती - मैं अंतिम सांस तक इस अंधेरी रात में अपने सूरज को पुकारती रहूँगी। बस अब इतना ही शेष है। '[21] वृद्ध के गीत को अपना अंतिम सत्य स्वीकार करती है। वह प्रद्युम्न को सूर्य कहती है। जीवन के अन्त में जब दोनों मिलते हैं तो अपनी अपनी भूल स्वीकारते हैं। वेनुरती अपने आपको

लज्जित तथा भयभीत कहती है तो प्रद्युम्न अपने-आपको संशय और घृणा कहता है। वेनुरती प्रद्युम्न से कहती कि उसे पशुवत बांधकर द्वारिका से लाया गया जिसकी जिम्मेदार रूक्मिनी है। सब तरफ से विरोध रहकर भी प्रद्युम्न तथा वेनुरती परस्पर प्रेम करते रहें। कहती है, परमेश्वर द्वारा ही उन्हे जन्मजन्मान्तर से बांधा गया है। आखरी मिलन के लिए वे अबतक जीवित थे आखिर में कहती है -

" अन्त:पुर में उस पहले दिन जब तुम्हें देखा था, समर्पित हो गयी थी, यद्यपि लज्जित थी। जिस दिन तुम्हारे अंक में सोयी थी, यद्यपि घृणा से भरी थी, फिर भी तुम्हे प्यार किया था। उस दिन मैं क्रोध से पागल थी जब तूने जरा के सामने मुझे अपमानित किया .... पर आज मैं केवल प्रिया हूँ ... लज्जित नहीं ... यदु ... यदु ...। "[22] जिन्दगी का लेखा-जोखा करते समय वह प्रत्येक क्षण प्रद्युम्न के पास ही आई थी। संशय, संघर्ष, घृणा, अपमान, लज्जा, क्रोध तथा उत्साह केवल प्रद्युम्न के लिये अपना रूप बदलते रहें, जो बार बार केवल यही धुन सुनाते थे कि - परस्पर दोउ चकोर, दोउ चंदा ...। वेनुरती एक ही धुन सुनना पसंद करती थी, प्रद्युम्न तथा वेनुरती - प्रियतम तथा प्रियतमा। दो परस्पर प्रेमी केवल एक दूसरे के लिए जियेंगे और एक दूसरे के लिये मरेंगे। संगीत की टूटती लय उसके जीवन का आधार है। नगर के श्रेष्ठ लोगों को तथा अर्जुन को वह बार-बार यही कहती थी, हमें प्रेम के लिये विदा का सिर्फ एक क्षण काफी है। अपने अंतिम सांस तक वह प्रद्युम्न का इन्तजार करती है और अन्त में प्रद्युम्न के अंक में ही अपने जीवन की आखरी सांस लेती है। प्रद्युम्न के अंक में ही मर जाती है।

डॉ. लाल ने वेनुरती को भी खंड़ित व्यक्तित्व के रूप में उभारा है। जिसका पर्यवसन मृत्यू में होता है। जब तक प्रद्युम्न-वेनुरती जिन्दा थे उनके हृदय घावों से क्षत-विक्षत थे। खंड़ित व्यक्तित्व का वैशिष्टय ही है जिन्दगीभर हृदयपर घाव लेकर जीना और मरते समय ये घाव और तेज हो जाते है। जिन्दगीभर का दर्द उसी समय उभरकर सामने आता है, जब अंतिम समय आता है। जीवन का संघर्ष अंतिम क्षण में पूर्णबिंब के रूप में उभरकर सामने आता है। ' सूर्यमुख ' नाटक के शुरू में सूर्यमुख एक साक्षात्कार शीर्षक के अंतर्गत डॉ. एम्.एल.शर्मा जी लिखते हैं -

" लगता है, नाटककार जिस चुनौती को सामने पाता रहा है, उसके लिये उसने पात्रों की तलाश जारी रखी है और थकर अनुपयुक्त को उपयुक्तता प्रदान करने की विवशता में से वह शक्ति उभरती है, जो पात्र वे पिछे छोड़कर नाटक को पात्रों से भी आगे चरित्र तक ले जाती है और दर्शक नाटककार एवं

चरित्र के मध्य चलनेवाले द्वंद्व को अनुभवकरता चलता है। "[23] पात्रों का द्वंद्व तथा अंत:संघर्ष हमारे सामने उसकी वेदना को प्रकट करता है। प्रत्येक पात्र की अपनी अलग वेदना - संवेदना है जो दूसरे पात्र पर उजागर नहीं होने देता, या छिपाना चाहता है। केवल प्रद्युम्न एवं वेनुरती परस्पर समर्पित होने के कारण एक दूसरे पर हक जताकर दूसरे की वेदना कम करने का प्रयास करते हैं। दोनों के संवादोद्वारा यह बात स्पष्ट होती है। प्रद्युम्न अपने आप पर क्रोधित होकर भी वेनुरती से कुछ नहीं कहता। " वस्तुत: प्रद्युम्न और वेनुरती के संघर्ष के आधारपर लेखक ने मनुष्य के संशय और द्वंद्व को ही उसका सब से बड़ा शत्रु दिखाया है। नाटक में दोनों का चरित्र बहुत सहज और मानवीय है, इन्ही दो पात्रों का संघर्षपूर्ण जीवन ही नाटक का केंद्र है। माँ और पुत्र की कृत्रिम संबंध रेखा में घुटते हुए पात्र अंतत: आत्म साक्षात्कार करते हैं। "[24] मिथकीय पात्र योजना - आधुनिकता को उजागर करना ही उद्देश्य रखती है। आज के नौजवान तथा युवतियाँ अपने आपको दोषी मानकर भी अपना प्रेम सफल होने के लिये हर तरह से प्रयत्नशील रहते हैं। तथापि सामान्य नाटक का नायक या नायिका ऐसा नहीं कर सकता।

दुर्गपाल :

प्रद्युम्न तथा वेनुरती के अलावा दुर्गपाल भी एक महत्वपूर्ण पात्र है जो प्रद्युम्न - वेनुरती के प्यार को अवैध न कहकर भूत-भविष्य का यथार्थ चित्रण करता है। कहता है -

" दुर्गपाल - कृष्ण अब अतीत है, वर्तमान अब तुम हो, और वह प्रद्युम्न भविष्य है। वह नया है, सूर्यमुख है। उसने इस अंध:कार में प्रेम का एक नया मन्वन्तर शुरू किया है। "[25] प्रद्युम्न - वेनुरती के प्यार को क्रांती का रूप देकर उन्हें एक प्रकार से सहायता ही करता है। प्रद्युम्न तथा वेनुरती के प्यार को नया अर्थदेकर नये संदर्भ में देखना चाहता है। वेनुरती को संगीत की देवी संबोधित करता है। प्रद्युम्न को द्वारिका का राजकुमार और भावी राजा भी मान्य करता है। साम्ब को कहता है, कि वह प्रद्युम्न का सबसे प्रिय था। उसीसे प्रश्न पूछता है -

" क्या वास्तव में प्रद्युम्न ने अधर्म किया है ? बोलो, प्रेम अधर्म है क्या ? "[26] प्रद्युम्न को आत्मनिर्वासित करने का दोष सगे-सम्बन्धियों पर तथा यदुकुल के लोगोंपर लगाता है। परमेश्वर से प्रार्थना करता है -" दुर्गपाल - हे आंतरिक्ष के देवताओं। प्रकाश करो। अपने ही द्वारा अपनी हिंसा करनेवाले इन पुरूषों को रोको। आकाश के महादेवताओं। जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरे की हत्या

करता है, आओ, उन्हें दंड दो। बचाओ इस डूबती नगरी की ... बचाओ। "[27] द्वारपाल द्वारिका नगरी, प्रद्युम्न तथा वेनुरती का हितचिंतक है। वह हर समय प्रद्युम्न का साथ देता है। जीवन के अन्ततक वह किसी का भी बुरा नहीं चाहता। जरा द्वारा उसकी हत्या होती है। जरा एक बहेलिया है, वह कृष्ण की भी हत्या कर देता है। यह पात्र खंडित पात्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसके खुद के हृदयपर कोई आघात नहीं। वह प्रद्युम्न का शुभचिंतक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। अगर उसे कोई अपना नीजि गम होता और उसी गम में वह समाप्त होता तो खंडित पात्र स्वीकारा गया होता। वह तो केवल एक रक्षक के रूप में उभरकर हमारे सामने आता है। ऐसा इमानदार व्यक्ति मिलना कठीन ही नहीं, दुर्लभ भी है। दुर्गपाल नाटक में समस्या के अनेक रूपों को प्रस्तुत करता है। वह तो इतिहास दृष्टा भी माना जा सकता है परंतु आखिर में परिस्थिति के सामने हार मानकर समाप्त होता है।

रूक्मिनी :

रूक्मिनी जो श्रीकृष्ण की पटरानी, प्रद्युम्न की माता तथा वेनुरती से जो कुछ रिश्ता लगता हो - वास्तव में वह वेनुरती की सौतन है परंतु वेनुरती उसी के पुत्र के साथ प्रेम का नाजुक बंधन जोड बैठी है। इसीलिये वह रूक्मिनी की बहू बन जाती है। रूक्मिनी को यह रिश्ता मंजूर नहीं। वह वेनुरती को अपराधिनी कहकर अर्जुन से कहती है - " सावधान अर्जुन। इसे मत दो कुछ बोलने का अधिकार। इसकी बातों में जादू है, उच्चाटन शक्ति है कुटिल नयनों मे। इसने एक ही मंत्र में मेरे पुत्र को अपने झूठे प्रेमपाश में बांधा और दूसरी ओर मेरे प्रभु को तोड़ डाला। "[28] रूक्मिनी पूर्ण रूप से वेनुरती को दोषी मानती है। अर्जुन यदुवंशी स्त्रियों को द्वारिका से ले जाने के लिये आया था तो उसे रूक्मिनी वेनुरती के विरूद्ध भडकाती है। परंतु अर्जुन भी प्रद्युम्न-वेनुरती के प्रेम को स्वीकारता है। व्यासपुत्र द्वारिका में केवल ध्वंस की भावना लेकर आया है और वह प्रद्युम्न के विरूद्ध द्वारिका वासियों को भडकाता है। केपल एक ही कार्य है उसका प्रद्युम्न-वेनुरती के प्यार में बाधा ड़ालना तथा प्रद्युम्न का विनाश। परंतु उसकी भी हत्या की जाती है। संगीकर भी प्रद्युम्न को वेनुरती से प्यार करने से रोकता है। सारे जनता को भी भडकाता है। प्रद्युम्न-वेनुरती का प्यार ऐसे लोगों से थोड़े ही टूटनेवाला था। उनका तो अमर प्रेम था जो अन्त में शरीर को समाप्त कर गया, परंतु दोनों के मन एकत्रित रहकर अन्त में मिलन हो गया। अन्यपात्र भिखारी लोग भी प्रद्युम्न तथा वेनुरती के खिलाप ही संभाषण करते हैं। उन्हें केवल अपने दो वक्त की रोटी का खयाल है। राजा मर जाय, राज्य नष्ट हो जाय उन्हें

उन्हें कोई पर्वा नहीं। मिथकीय संवेदना हर पात्र के हृदय से टपकती है। हर पात्र का अपना स्वतंत्र स्थान है, जो दूसरे या सामान्य पात्र से भी भिन्न होकर महत्वपूर्ण है।

यक्षप्रश्न - उत्तरयुद्ध :

डॉ. लाल के लघुनाट्य - यक्षप्रश्न तथा उत्तरयुद्ध के पात्र पांचो पांडव हैं। केवल यक्षप्रश्न का यक्ष तथा उत्तरयुद्ध का विदूषक ही स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण पात्र है। अगर इसे सूत्रधार कहा जाय तो अत्योक्ति नहीं होगी।

विदूषक :

' उत्तरयुद्ध ' के पहले दृश्य में ही विदूषक दर्शकों से बातें करता है। वह पांचों पांडवों की स्थिति का वर्णन करता है -

" ये पाचों पांडव बैठे है। इतने गंभीर है अपनी समस्या में डुबे हूए कि इन्हे इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं कि हम लोग भी आखिर यहाँ बैठे हैं। ये कुछ कहेंगे नहीं, करेंगे नहीं तो हम क्या कर सकते हैं ? "[29] विदूषक नाटक की कथा बताता है कि जब पांडवों को वनवास हुआ था तभी अर्जुन ने द्रौपदी को जीत लिया है। पांचो पांडवों की विशिष्टता बतात है - जैसे युधिष्ठिर परमज्ञानी विद्वान। अर्जुन संसार का बेजोड धनुर्धारी। भीम बीहड गदाधारी, गुस्सैल, नकुल सुंदरता में अद्वितिय और सहदेव अद्भुत गायक। विदूषक नाटक की शुरूआत में सब कुछ बता देता है। फिर पांचो पांडवों का वार्तालाप और एकदम सा विदूषक उनके भाष्य के बीच समा जाता है। पांचों पांडव आश्चर्य में डूब जाते हैं कि यह कौन हममें आ गया। परंतु विदूषक उन्हें समान्य कराके अपना परिचय देता है। फिर सब में बातचीत होती है। युधिष्ठिर द्रौपदी को प्रिया, पंडिता, पतिव्रता तथा परम दर्शनीया संबोधित करता है। है। विदूषक युधिष्ठिर से कहता है -

" बात यह है कि जब आदमी वस्तु को यथार्थ को देख नहीं पाता तो उसकी कल्पनाएँ करता है और इसका फल यह होता है कि जब वह वस्तु, वह यथार्थ सामने दीखता है तब हम उसे उसी कल्पना की आखों से देखना चाहते हैं, और निराश होते हैं। "[30]

विदूषक पांचो पांडवों को एक-एक करके द्रौपदी को देखने के लिये भेजता है। पांचो पांडव द्रौपदी की अपनी तरफ से तारीफ करते हैं। परंतु विदूषक सब भाईयों की केवल दूर रहकर ही खिल्ली उडाता है। भाई भाई आपस में एक होने का दावा करते हैं परंतु वास्तव में एक नहीं है। क्रियावान समझते

है, परंतु क्रियाहीन है। आधुनिक परिवेश में यह पात्र सब के नकली मुखौटे को तोडकर असली रूप दर्शकों के सामने लाता है। उसके इस प्रयास में भाई भाई में कभी झूठ बोलना पड़ता है। एक भाई का दूसरे भाई से कोई संबंध नहीं ऐसा दर्शाकर भी बातचीत करता है। पांडवों के मन की बात को जानने के लिये हर एक का विश्वासपात्र बनता है। द्रौपदी को बाट लेना कितना मुश्कील है यह बात सब को समझाता है। द्रौपदी शक्ति है, उसका जन्म यज्ञ की अग्नि से हुआ है। यज्ञ जीवन है और अग्नि शक्ति। इसलिये द्रौपदी केवल जीवन ही नहीं उसी जीवन की शक्ति भी है। नाटक के अन्त में विदूषक आधुनिक संवेदना स्पष्ट करता है। द्रौपदी शक्ति है जो दु:शासन छीन लेना चाहते हैं और धर्म नीति (युधिष्ठिर अर्जुन) कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि उसका आपस में मनमुराव है। उपरी स्तरपर वे एक है, परंतु अंतस्त तक देखनेपर यह बात मालूम हो जाती है कि यह तो केवल दिखावा मात्र है। वास्तव में विदूषक केवल पांचो भाईयों की बात नहीं कर रहा है वह तो हम सब की बात कर रहा है। निष्ठा, शब्दशक्ति, भक्ति, प्रेम ये केवल नाममात्र शब्द है, जिसका हमारे नित्य जीवन से कोई मतलब नहीं रखता। हमे केवल अपना स्वार्थ मात्र दिखाई देता है। हमारे स्वार्थ के सामने हम किसी के अच्छे-बुरे का खयाल नहीं करते। विदूषक कहता है कि विजय सदा सत्य की, पुराण की हुई है। परंतु पुराण में जो द्रौपदी की चीख है वह बिलकूल आज के पीडित नारी की आवाज है। जो केवल सुनी जा सकती है, उसपर उपाय कोई नहीं करता, या करना चाहता नहीं।

" द्रौपदी का दु:शासन अपहरण करता चला जा रहा है - यह एक घटना है, या दुर्घटना, हम इसपर विचार कर सकते हैं। विचार का यह फल हो सकता है कि यह जगत माया है और सबकुछ उसी ईश्वर के ही अधीन है। पर द्रौपदी की चीख हमारे कानों में क्यों टकरा रही है। यह द्रौपदी की उस चीख का कसूर है या हमारे कानों का ? "[3] यह एक विडम्बना - हमारे तत्कालिक जीवन की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? यह पात्र मिथक का पात्र बनकर हमारी आत्मा को हमारे जमीर को जगाना चाहता है, पर हाय रे किस्मत कोई भी तो इससे सबक लेनेवाला नहीं। विदूषक अपने संभाषण द्वारा ही नाटक का उद्घाटन करता है। विदूषक की चरित्र-सृष्टि के बारे में डॉ. सरजूप्रसाद विश्व के विचार मननीय है -

" विदूषक पर नाटककार ने कई उत्तरदायित्व सौंपे हैं - सूत्रधार के रूप में महाभारत के द्रौपदी स्वयंवर का रोचक किंतु संक्षिप्त वर्णन करते हुए उसे वर्तमान दृश्य से जोड़ना, गंभीर दार्शनिक संवादों

के बीच में हास्य और व्यंग्य की सृष्टि कर दर्शकों की रूचि को बनाए रखना तथा अन्ततः समकालीन निष्क्रियता पर टिप्पणी करते हुए नाटककार ने प्रतिनिधि पात्र की भूमिका अदा करना। "[32]

(इस नाटक के अन्य पात्र है - युधिष्ठिर - भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव।)

द्रौपदी :

इस नाटक में एक खास बात यह है कि, नाटक में द्रौपदी - स्त्री - पात्र प्रत्यक्ष उभारा नहीं गया केवल उसके बारे में चर्चा की गयी है। जैसे - नाटक की शुरूआत में विदूषक द्रौपदी का जिक्र करता है। पांचो पांडव तथा माता कुंती वनवास में है, अर्जुन द्रौपदी को जीतकर लाता है और माँ से कहा देखो, हम क्या ले आये ? माँ को लगा भिक्षा है - बोली पांचो भाई बाटकर खा लो। परंतु यह क्या कर दिया कुन्ती माँ ने ? यहाँपर कुन्ती तथा द्रौपदी केवल पांचो पांडवों के संवादों से पात्रों का पता चलता है। रंगभूमि पर इनका कोई काम नहीं। पूरे नाटक में द्रौपदी के बारे में पाँचो भाइयों में संवाद चलते रहते है, परंतु प्रत्यक्षतः द्रौपदी की उपस्थिति रंगमंचपर नहीं होती। पांचो भाई अपनी तरफ से उसकी स्तुति करते हैं।

युधिष्ठिर कहते हैं - ' द्रौपदी सामान्य नारी नहीं। उसका जन्म यज्ञ की ज्वाला से हुआ है। वह याज्ञसेनी रूपवती है। अग्नि ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की पहचान है। उसने जन्म पाया है, उपभोग के लिये नहीं, जलने और जलाने के लिये। '[33] युधिष्ठिर हर बार दूसरों को ज्ञानी तथा बड़ा मानता है। कहता है हम पांचो भाई एक है। बनवास में हैं, शत्रू से घिरे हुए है। हमें चिंता तथा भय ने ग्रस लिया है, परंतु हम चिंता नहीं बांट सकते तो भय को बांट लेते हैं। सबसे पहले वही द्रौपदी के समक्ष जाता है उससे वार्तालाप करता है, और आकर पांचो भाईयों को उसका कथन सुनाता है -

" द्रौपदी ने आरक्त मुख से कहा - दुर्योधन का कलेजा तो खैर है ही लोहे का बना, और आप केवल धर्मभीरू है। तभी आपने उसके कटु वचन सहें। आप सहेन के आदि हो गये हैं। आप धर्मराज है और दुर्योधन एकाधिपति। .... आप को क्रोध न आए, मुझे क्रोध आता है। "[34] द्रौपदी अपने मन की भडास निकालती है जिसको जिक्र संवाद द्वारा ही मालूम पडता है। पांचो भाई अपनी तरफ से द्रौपदी की तारीफ करते हैं। युधिष्ठिर तो बहुत ही शांत व्यक्तित्ववाले व्यक्ति है। वह द्रौपदी को एकनिष्ठा, सत्ता शक्ति आदि संबोधन से पुकारता है। सब विचार करेंगे, ऐसा सोचते हैं।

अर्जुन कहते हैं - कि वास्तव में द्रौपदी को मैंने जीता था उसपर किसी का अधिकार

नहीं। कहता है अगर हम पांच भागों में बंट जायेंगे तो कोई भी हिस्सा बराबर का नही रहेगा। सब को ईर्षा होने लगेगी। कहता है -

" द्रौपदी की सुन्दरता की गठन ही निराली है। श्यामल रंग भी न्यारा है। वह यज्ञसेनी है। सांवले सौंदर्य की परिसीमा। वह जानती है, वह किसी भी पुरुष को प्रभावित कर सकती है। उसका यह अभिमान उसकी प्रत्येक चितवन में है। "[35] उसे भयंकर कहता है। सब भाई एक सूत्र में बंधे हैं और उसका जवाब केवल द्रौपदी है। सब भाई भयभीत है, द्रौपदी के दृष्टि में सब भाई आत्मविश्वासहीन है। द्रौपदी अर्जुन से कहती है, जब श्रीकृष्ण शांती प्रस्ताव लेकर गये तो वह तिलमिला उठी। पूछा उसने स्वयंवर में जीतकर क्यों लाया गया ? धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन के लिये उसे मांगा था, पर ऐसा नहीं हुआ।

" याज्ञसेनी के दहकते मुख को अपलक देखता रहा और मेरे कानों में उसके स्वर वज्र की तरह टूटते रहे। नयन - कमल की पखुरी में जैसे बीजली तडप रही थी। अचानक वह बोली - उत्तर युद्ध है। केवल युद्ध ? क्यों ? कैसे ? मैंने पूछा। उसने मेरे मस्तक को छू कर कहा - जीवन गति है। जीवन ईच्छा है। जीवन असंतोष है, दुःख है। इसके मूल मे विस्तार है। संघर्ष इसकी धूरी है। युद्ध अनिवार्य है। युद्ध में सारे भाईयों को मिलकर एक होना होगा। एकता के लिये निष्ठा अनिवार्य है। '[36]

नाटक में पांचों भाईयों को स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं उभारा गया है, उनके एकता की तथा निष्ठा की बाते सुनकर तो लगता है कि सचमुच पाचो भाई एकसूत्र में बांधे है, परंतु नाटक के अंत में जब द्रौपदी को बचाने का समय आता है तो भाई एक दूसरे पर जिम्मेदारी निभाने का दावा करते हैं, परंतु कोई भी आगे नही बढ़ता। दूसरे पर बड़प्पन का आरोपण करके अपने - आपको बचाना चाहता है। आत्मरक्षा करना चाहता है। दूसरे पर ज्यादा जिम्मेदारी है। ऐसा दिखावा करता है।

भीम वास्तव में परम पराक्रमी, गदाधारी, परमयोद्धा है। द्रौपदी की स्तुति करता है। अपने शक्तिपर अहंकार है उसे। द्रौपदी केवल उसे चाहती है ऐसा बहाना करता है, कहता है -

" द्रौपदी शक्ति है और मैं ही शक्तिशाली हूँ। शक्ति हमेशा शक्तिवान के पास ही जाती है। पता है ? बिजली आकाश से सीधे धरती में ही समाती है। एक शक्ति को दूसरी शक्ति चाहिये। "[37] कहता है उसके योग्य केवल मैं हूँ, मैं अकेला उसे हथिया लूँगा तो सारे भाई अपना अपना प्रबन्ध कर लेंगे। द्रौपदी से मिलतकर आते है तो विदूषक को बता देते हैं कि उसने क्या कहा ? ' मुझसे कहा - वनवास में

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

हूँ। तो क्या श्रृंगार न करूँ ? मुझसे माँगे है सहस्त्र दलवाले रंग बिरंगे कमल के फूल। ये फूल गंध-मादन पर्वत पर ही खिलते हैं। मैं अपनी स्वामिनी के लिये कमल लाने जा रहा हूँ। "[38] वनवास में भी भीम को श्रृंगार सूझता है। द्रौपदी सब को युद्ध करने के लिए कह रही है और पांचो भाई केवल इसी चिन्ता में डूबे हैं कि वेद द्रौपदी को अकेले कैसे अधिकार में किया जा सकता है। इसी फिक्र में पांचो भाई अलग अलग विचार कर रहे हैं। अंत में द्रौपदी को दुःशासन खींच कर ले जा रहा है परन्तु उसकी किसी को परवाह नहीं। आखिर में पांचो भाईयों में से कोई भी उसे नहीं बचाता। विदूषक उनपर आखिर में व्यंग्य कसता हुआ कहता है - शत्रू को पता था कि वास्तव में तुम एक नहीं हो। द्रौपदी को बांटने चले है स्वयं ही बँटे हुए हो। सत्य उगागर कर देता है। विदूषक वास्तव में पांचो पांडव एक निष्ठा - एक सूत्र में बंधे हुए नहीं थे। अगर वे भाई एकसूत्र में बांधे होते तो द्रौपदी को - शक्ति को कभी भी एक सूत्र में शत्रू के हाथों, दुर्योधन, दुःशासन के हाथों अपहरित नहीं होने देते। आधुनिक चेतना में डॉक्टर लाल ने यह बात कहनी चाहि है कि, आज के समाज का व्यक्ति कितना लालची, मोहमय हो गया है ? सारा सुख केवल अपने लिये है, ऐसा सोचकर ही व्यक्ति दूसरे का दुःख या चिंता की पर्वा नहीं करता। ये पात्र आधुनिक समाज के व्यक्तियों के द्योतक है जो बहुत ही स्वार्थी और नीच प्रवृत्तिवाले हैं।

नकुल और सहदेव सबसे छोटे हैं, उन्हें पता है बड़े भाई वीर, महावीर है, उनके हाथ से भूल से अगर कुछ मिल जाए तो वह केवल दया। नकुल कहता है - " जो अलग है, वह छोटा है, जो छोटा है, वह असुंदर है। वही दुःख है। सौंदर्य बांटता नहीं। "[39] नकुल और सहदेव अपने आप को केवल आज्ञाधारी समझते हैं। याज्ञसेनि से बचना आसान कार्य नहीं है। अर्जुन द्रौपदी के पास दोनों को साथ-साथ भेजता है परंतु वे अलग अलग जाते हैं, कहते हैं - सहदेव - ' उसके हृदय में कितनी अथाह ममता है। हम भाईयों के लिये अपने हाथ से भोजन बना रही है। मुझसे कहा - मैं अपनी हाथ से तुम्हें भोजन कराऊँगी। तुम्हारी शक्ति संगीत है। तुम गाओगे तभी युद्ध-भूमी में संगीत पैदा होगा। जो मरे है वो जी उठेंगे, जो दीन है वे अदीन होंगे । "[40] परंतु अंत में जब द्रौपदी को बचाने का समय आता है तो कहता है मैं सबसे छोटा हूँ। द्रौपदी को प्रिया कहता ओर उसका पातिव्रत्य एक युद्ध है ऐसा कहती है। नकुल कहता है - ' मुझसे बोली - युद्ध ही पहला और एकमात्र अंतिम धर्मबद्ध कार्य है। तुम्हारा समर्पण ही मेरा पातिव्रत्य है। तुम्हारा रूप मेरे लक्ष्य में रहेगा पर तुम्हारी वीरता ही मेरी माँग का सिंदूर होगा। "[41] परंतु जब द्रौपदी को बचाने का समय आता है तो अर्जुन से कहते हैं

कि उसे तो स्वयंवर में तुमने जीता था। सुख के समय में केवल सब को द्रौपदी चाहिये, परंतु जब युद्ध करने का समय आएगा तो भाई दूसरे पर उसके अधिकार का महत्व तथा कारण बतायेंगे। सब को सुख की चिंता है, अपने - अपने हित की तथा अपने - अपने स्वार्थ की पड़ी है। अंत में द्रौपदी को कोई भी नहीं बचाता। अपने आप को वीर महाशक्तिशाली महाप्रतापी, महापराक्रमी समझने वाले ऐन समय पर पीछे हट जाते हैं। दूसरे का ढाल जैसे उपयोग करने के लिए तडपते हैं। द्रौपदी के पांच पराक्रमी पुरूष पती होने पर भी दुर्योधन जैसे निरंकुश शासक उसका अपहरण करते हैं। शक्ति को बचाना - आत्मसम्मान को बचाना इतना आसान कार्य नहीं है। मिथकीय पात्रों की संवेदना उजागर हुयी है। डॉ. सूरज प्रसाद मिश्र का कथन सही है -

" नाटक के पात्र प्रतीकात्मकता लिए हुये हैं। नाटक में सदैव परदे के पीछे रहनेवाली द्रौपदी शक्ति है तो वनवासी पांडव विभाजित जनशक्ति है। - - - दुःशासन व्यवस्था का प्रतीक है। - - - विदूषक है समययुग जो समकालीन निष्क्रियता को देखकर हँसता है। "[42]

यक्षप्रश्न :

यक्षप्रश्न के प्रमुख पात्र है यक्ष तथा अन्य पात्रों में पांच पांडव। - यक्ष - जल के तट पर खड़ा कितने बरसों से किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। जो उसके प्रश्नों के समाधान कर सके। पांचो पांडव जल पीने के लिए एक-एक कर के आते हैं और बिना उत्तर दिये मर जाते हैं। जो यक्ष का प्रश्न है वह हरसमय की प्रश्न है। जो अपने समय का उत्तर नहीं देता वह जीने के लिये योग्य नहीं। ऐसा अर्थ इससे निकलता है। जो केवल अपने तक सीमित है अपने-से बाहर आकर दूसरे का विचार नहीं करता उसे जीवन बिताने में कठिनाई होगी, जो अहंकार में डूब गया है उसे जीना आसान नहीं है। यक्ष सभी भाईयों से अलग-अलग सवाल पूछता है, पहले सहदेव पानी पीने के लिए आता है, दर्शकों से ही अपना परिचय कराता है। शुद्ध तथा अथाह जल देखकर आनंदित हो उठता है। और जल पीने के लिए बढ़ता है। परंतु यक्ष प्रश्न पूछता है समय क्या है ?, पर वह उत्तर नहीं दे पाता और मर जाता है। उसके बाद नकुल आता है - वह भी यक्ष के प्रश्न का उत्तर दिये बिना जल पीने बढ़ता है पर जल पी नहीं पाता। ये पात्र केवल आधुनिक मानव के प्रतीक मात्र में उभरे गए हैं। उन्हें जीवन का सही अर्थ मालूम नहीं। बस जिये जा रहा है। अपने से बाहर आकर कभी भी नहीं सोचते। दो वक्त की रोटी कमायी तो जीवन सार्थक हो गया - किडे-मकौडे की तरह जीवन जीता रहे हैं। नकुल, सहदेव तो खैर छोटे हैं। परन्तु अर्जुन तथा भीम तो धनुर्धारी - गदाधारी - महापराक्रमी योद्धा

है, उन्हें भी अपने समय का उत्तर नहीं आता है। यक्ष उन्हें भी प्रश्न पूछता है पर चारों भाई उचित उत्तर नहीं दे सकते इसी वजह से प्यासे के प्यासे मर जाते हैं। उन्हें केवल गदा चलाना, बाण चलाना आता है। शब्द के बाण उन्हें मालूम नहीं। आजतक बड़े भाई के आज्ञानुसार वर्तन करते रहें परंतु जीवन का सही अर्थ उन्हें मालूम ही नहीं, इसलिये मर जाते हैं।

युधिष्ठिर :

अंत में जब युधिष्ठिर आता है, तो वह शांत, विचारी तथा मर्मभेदक ज्ञान रखनेवाला है। अपने चार मरे हुए भाई देखता है तो आश्चर्य में डूब जाता है। यक्ष उससे सवाल करता है तो सही उत्तर देकर उसकी - यक्ष के - प्रश्न की प्यास पहले बुझाता है। यक्ष के प्रश्न के उचित उत्तर देकर उसे शान्त करता है। परंतु युधिष्ठिर पहले यक्ष की परीक्षा लेता है। यक्ष से ही प्रश्न पूछता है और जब पूर्ण रूप से संतुष्ट हो जाता है तो प्रश्न कहने को कहता है।

' यक्ष : अशिर्वाद क्या है ?

युधिष्ठिर : सब का कल्याण।

यक्ष : सब क्या है ?

युधिष्ठिर : सब मैं ही हूँ। मैं ही सब हूँ।

यक्ष . शक्ति क्या है ?

युधिष्ठिर : सब का काल चुनौति से संघर्ष। "[43]

इसप्रकार यक्ष के प्रश्नों का समाधान करता रहता है। भयभीत तथा मुक्त में अंतर बताता है। जो सुरक्षित होना चाहता है, वही भयभीत है और जो सुरक्षा से मुक्त है वही उचित है।

' यक्ष : अपना क्या है ?

युधिष्ठिर : जो सामने है वही।

यक्ष : सुख क्या है ?

युधिष्ठिर : चैतन्य रहना।

यक्ष : दुःख क्या है ?

युधिष्ठिर : संवादहीन होना।

यक्ष : संवाद क्या है ?

युधिष्ठिर : समान होना। "[44]

यक्ष युधिष्ठिर को कहता है कि मैं तुम्हारे उत्तर से संतुष्ट हूँ अब तुम अपने एक भाई को जीवित कर सकते हो। तो वो सहदेव को जीवित करना चाहता है। पूछने पर बताता है कि यह मेरी माता का नहीं, दूसरा है, और दूसरा ही महत्वपूर्ण है। इसप्रकार यहाँ भी अपने महत्व की झलक दिखाता है। फिर यक्ष सब भाईयों को जीवित करते हैं। काल ही उष्मा से घिरा हुआ है और उत्तर सूर्य की तेज किरन में है। काल का प्रश्न सूर्य भरा थाल है, तो उसका उत्तर है वर्तमान से जूँझना और अपना स्वयं उत्तर ढूँढना।

नरसिंह कथा :

नरसिंह कथा के पात्र है - प्रल्हाद, हिरण्यकशिपु, हुताशन ये प्रमुख पात्र तथा अन्य पात्र भी है जैसे जय विजय, डुंड्डा, महारक्षक, सेनापति आदि।

' नरसिंह कथा ' में युग का, राजनीति का दाहक सत्य है।

हिरण्यकशिपु :

हिरण्यकशिपु प्रल्हाद का पिता तथा एक निरंकुश राजा के - निरंकुश मनोवृत्ति के शासक के-रूप में उभरा है। उसने ईश्वरीय सत्ता को नकार कर स्वयं को ईश्वर घोषित किया है। हर समय अपने आप को राष्ट्र, देश, ईश्वर सब कुछ समझता है। कहता है -

" राजा ही ईश्वर है। राजा ही देश है। "

जो बंदी गृह में है, वे देश के शत्रु है। उन्हें अभी मुक्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ' तथा

" मैंने अनुभव किया, देश में और मुझ में कोई अन्तर नहीं। "[45]

हिरण्यकशिपु तथा प्रल्हाद के पुराण पात्रों के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक, प्रासंगिक यथार्थ को उजागर किया है। आपातकालीन शासन की निरंकुशता और दमन को हिरण्यकशिपु के माध्यम से मिथकीय आवरण में प्रस्तुत किया है। तथा तत्कालीन राजनैतिक जीवन की निरंकुश प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति देने के लिए नाटककार ने हिरण्यकशिपु के चरित्र का सहारा लिया है। हिरण्यकशिपु मात्र पौराणिक पात्र नहीं, वरन् आज के निरंकुश शासक का प्रतीक भी है। हिरण्यकशिपु व्यक्तिगत स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं है। राजा की सत्ता ईश्वरीय सत्ता है, आखिरी सत्ता है ऐसा मानता है। उसने अपने अनुयायीयों को फर्माया है कि जो भी इसका - एकाधिकार का - विरोध करेगा उसे तत्काल बन्दी बना दिया जाएगा। जंतक और हिंसा द्वारा सामान्य जनता में भय फैलाये रहता है। उसने यह

राज्य भी गणतंत्र के आध्यक्ष अभयविच्छु का वध करके हाथिया लिया है। वास्तव में वह किसी भी राज्य का राजा या मुख्य शासक नहीं। यह छीना हुआ राज्य फिर कोई न छीन ले इस फिक्र में सतत जागृत रहता है। उसने राज्य हाथिया लिया परंतु उसे चिन्ता तथा भय खाये जा रहा है। जिस प्रकार उसने अत्याचार किया उसी प्रकार अगर किसी ने अत्याचार के माध्यम से उसका राज्य छिन लिया तो क्या करेगा वह ? सामान्य जनता की स्वतंत्र चेतना तथा अभिव्यक्ति के मूल अधिकारों को छीन लेता है। अपने राज्य को नष्ट होने से बचाने के लिए वह एक बालिश प्रयोग करता है - घडे के साथ शादी। भला घडे के साथ भी किसी की शादी हुयी है ? परंतु हिरण्यकशिपु कितना अन्धविश्वासी हो गया है ? केवल अपना एकाधिकार स्थापित करने के लिये वह घडे के साथ शादी करता है और वही उसी जगह वह घडा तोड भी देता है। जिससे उसके मन को यह तस्सली होती है कि, उसके सब कष्ट या दुर्घटनाएँ टल जायेगी। अपने पुत्र तथा पत्नि का त्याग कर देता है, केवल इसी कारण से कि, उसे सही मार्ग पर जाने के लिए उसके निरंकुशता पर - एकाधिकार पर, वे प्रसन्न नहीं, उसे ऐसी नृशंसता करने से रोकते हैं। प्रल्हाद पर बहुत क्रोधित हो जाते हैं -

" मारना मुझे केवल प्रल्हाद को है। हर तरह से मार डालने का प्रयत्न किया, लेकिन बच जाता है। यह रहस्य समझ में नहीं आता। जिसे भी उसकी हत्या करने के लिये भेजता, वह उसी का हो जाता है। "[46] प्रल्हाद की हत्या करने का हर प्रयास असफल हो जाता है फिर अपने आप से ही भयभीत है। राजनर्तकी को प्रल्हाद को समाप्त करने के लिये भेजता है परंतु कोई भी शक्ति प्रल्हाद को समाप्त नहीं कर सकती। हुताशन से भी प्रल्हाद की हत्या के लिए कहता है, परंतु हुताशन का भी हिरण्यकशिपु पर भरोसा नहीं। कभी भी भरोसा नहीं किया, क्या वह अचानक हो सकता है ? अपने निर्मम शासन की वजह से ही हिरण्यकशिपु समाप्त हो जाता है।

हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधू घड़े को गूंगी पताका संबोधन देकर कहती है, प्रजा का हितकारी अपने आप को साबित करके प्रजा के साथ भी जो चाहो जैसा चाहो व्यवहार कर रहें हो। और फिर घड़ा तोड़ने का मतलब है प्रजा को नष्ट करना, प्रजा को नष्ट इसलिये किया जायेगा कि तुमने - हिरण्यकशिपु - ने जो अत्याचार किये हैं, उसका पता किसी और को नही लगना चाहिए। परन्तु हिरण्यकशिपु उसकी कोई बात नहीं सुनता। अपने कर्म करता रहता है।

संक्षप में,[47] नरसिंह कथा ' नाटक का हिरण्यकशिपु मात्र पौराणिक पात्र न होकर आज

की उस निरंकुश शासन सत्ता का प्रतीक है जो शक्ति और साधनों के केंद्र में अवस्थित होकर स्वयं को उपास्य बना देती है। वस्तुतः इस रूप में, हिरण्यकशिपु पात्र की अपेक्षा प्रवृत्ति बन जाती है जो किसी भी व्यक्ति में समय पाकर उभर आती है। "[47]

प्रल्हाद :

प्रल्हाद इस नाटक का सही अर्थ में नायक है। प्रल्हाद एक शान्त, सरल, सहज साधनहीन, प्रेममय तथा रागद्वेष से उपर उठा हुआ पात्र के रूप में उभरा है। प्रल्हाद पौराणिक पात्र नहीं के बराबर है। आज के सजग युवक का प्रतिनिधित्व करनेवाला आधुनिक मिथकीय पात्र है। पुराण का प्रल्हाद तो बालक के रूप में चित्रीत किया है परंतु रचनाकार ने इस बालक को युवक - चिंतनशील युवक, अपने अधिकारों के प्रति सजग रहनेवाला युवक को चित्रीत किया हे। गणतांत्रिक शक्तियों का प्रतीक प्रल्हाद हिरण्यकशिपु की प्रजा दमन एवं निरकुंश प्रवृत्ति का विरोध करके जन जागरण का शंखा नाद करता है। नाटककार के विचार इन चरित्रों के लिये द्रष्टव्य है -

" यह कैसी पौराणिक कथा है। ये कैसे पुराण चरित्र है, जिनमें जीवन के कितन गहन और आधुनिक संघर्षों, प्रश्नों की ओर ऐसे सार्थक संकेत हैं। एक ओर हिरण्यकशिपु है, जो एक तरह से अवध्य है। जो इतनी शक्तियों, साधनों का स्वामी है। और दूसरी ओर है प्रल्हाद - सहज, सरल, साधनहीन, प्रेममय, रागद्वेष से उपर उठा हुआ। जो युद्धरत है पर जिसमें घृणा नहीं है, प्रतिक्रिया नहीं है। जो हिरण्यकशिपु जैसे बर्बर, निरंकुश शक्ति और अधिनायक सत्य से लड़ रहा है। मानव मूल्यों की बुनियाद स्वतंत्रता के लिए। "[48]

प्रल्हाद बालक नहीं अपितु राजनीतिक चिंतक एवं दार्शनिक के रूप में चित्रीत किया है। उसका यही मिथकीय रूप पूरे नाटक को मंत्रमुग्ध करता है। अपने चिन्तन और आचरण में वह सत्य, अहिंसा और लोक तांत्रिक शक्तियों का प्रतीक है। उसकी यही विशेषता सामान्य नाटक के सामान्य पात्र से उसे उपर उभारती है। मिथकीय प्रतिमान का रूप आधुनिक चेतना में ढ़ालकर नाटककार ने उसे सजग रूप प्रदान किया है। प्रल्हाद शासन की निरंकुशता को अहिंसा, त्याग, सद्भाव से वश में करने की बात करता है। प्रल्हाद की भूमिका क्रांती द्रष्टा एवं पथ प्रदर्शक की है।

प्रल्हाद नाटक का नायक ही नहीं वह तो आज के तत्कालिन जन-सामान्य का प्रतिनिधित्व करता है। निरंकुश सत्ता का नाश करना दूर उसके खिलाप अगर आवाज भी उठायी गयी

तो उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जायेगा। परंतु प्रल्हाद को हुताशन जैसे व्यक्ति मिलने पर वह और भी अपने उद्दिष्ट के प्रति झूकता है। हुताशन के पशुतत्व को जागृत करना केवल प्रल्हाद जैसा जागरूक दार्शनिक का ही कार्य है। सामान्य जनता का हक उन्हें मिलना ही चाहिए, उनके विशेषाधिकार को कोई एकाधिकारी नहीं छिन सकता ऐसी गर्जना केवल प्रल्हाद जैसी शक्ति का कार्य है।

प्रल्हाद अपने पिता के विरूद्ध ही खड़ा रहता है। वास्तव में पिता की छाया में पुत्र को कोई हानि या दुख नहीं होता, परंतु इस नाटक में पिता अपने पुत्र के विरूद्ध है। उसे बंदीगृह में डालने के लिए जरा भी हिचकीचाता नही। उसे अपने बेटे से ज्यादा प्यार अपने एकाधिकार पर है। यह प्रल्हाद के जीवन का करूण सत्य नहीं तो और क्या है ? प्रल्हाद यह सुन लेता है कि, उसके पिता हुताशन को प्रल्हाद की हत्या करने के लिये कहता है। परंतु प्रल्हाद को हुताशन पर पूरा भरोंसा है। वह उससे निर्भर रहता है।

" प्रल्हाद - हुताशन मेरा जन्मजात मित्र है। उसीसे मैंने जाना केवल नर से पशु नही मारा जाता और केवल पशु से पशु नहीं मारा जाता। जो मेरा पिता हरतरह से अवध्य है, जिसे मारनेवाला कोई नहीं, न कोई अस्त्र शस्त्र, न कोई साधन, कोई स्थिति, न देशकाल, उसे आधा नगरवासी, आधा आदिवासी, आधा नर आधा सिंह - नरसिंह अपने नखों से ऐसे हिरण्यकशिपु का वध कर सकता है। "[49]

अपने पिता के निर्ममता पर वह बहुत ही दुखी है। अंत में हिरण्यकशिपु उसे कहता है कि अपने ईश्वर को पुकार, वह आयेगा तुझे बचाने के लिये। परंतु वह कुछ भी नही कर सकता। पुराण के प्रल्हाद से आधुनिक प्रल्हाद निम्नांकित संवाद से उभरता है -

" यद्यपि यह मर गया फिर भी भविष्य में इसकी याद हमें रहेगी - सत्ताधारी के कान में धिरे से कहेगा - हो जाओ निर्मम। ऐसा शासन अब और आसान, एक हिरण्यकशिपु ऐसा कर चुका है। "[50]

पुराण का हिरण्यकशिपु मर गया, परंतु आज के तत्कालिन समाज में कुछ निरंकुश शासक में हिरण्यकशिपु का रूप उभरकर हमारे सामने आता है। प्रल्हाद की आधुनिक मिथकीय चेतना इससे स्पष्ट हो जाती है, कि वास्तव में हिरण्यकशिपु मरा नहीं आज के नृशंस शासक के रूप में जिंदा है।

हुताशन :

नाटक के अन्य पात्रों में हुताशन का चरित्र बहुत ही ठोस भूमिका में उभरा है।

हिरण्यकशिपु हुताशन को प्रल्हाद को मारने के लिए विश्वास दिलाता है, कहता है -

' हिरण्यकशिपु : तुम्हे मुझपर विश्वास नहीं ?

हुताशन : यहाँ किसी पर विश्वास करने का कोई प्रश्न ही अब कहा रह गया ?

हिरण्यकशिपु : तुम मेरी बात पर विश्वास कर सकते हो।

हुताशन : जो अब तक था ही नहीं, वह एकाएक कहा से आयेगा ? [5]

हिरण्यकशिपु हुताशन को प्रल्हाद की मृत्यु की योजना सुनाता है परंतु उसे हुताशन कायरता पूर्ण कहकर स्वीकार नहीं करता और अपने आप योजना बताकर उन्हें सुनाता है। परंतु अंत में हिरण्यकशिपु को ही समाप्त करता है। शुक्राचार्य को हुताशन गुरू मानने को तैयार नहीं। वह तो शुक्राचार्य को हिरण्यकशिपु का खरीदा हुआ गुलाम कहता है।

डुंडा :

हिरण्यकशिपु की बहन की रूप में उभरा हुआ पात्र है, जो अपने आप ही जलकर भस्म हो जाता है। प्रल्हाद को खत्म करने के लिए उसे हिरण्यकशिपु उकसाता है, परंतु वह असहाय सी अपने आप ही जलकर राख होती है। जय-विजय नाटक को नाटक में खेला जा रहा है। यह बताते हैं और हिरण्यकशिपु के राज्य में वैद्य तथा ज्योतिषी बनकर प्रविष्ट होते हैं। वज्रदन्त हिरण्यकशिपु का गुप्तचर है, वह जरूरत से ज्यादा महत्वाकांक्षी है और इसीलिये किसी के भी विश्वास का पात्र नहीं है। राजा का ही गुप्तचर है परंतु जय-विजय को पूछता है कि राजा को - हिरण्यकशिपु - को कहीं भी किसी भी जगह किसी अस्त्र-शस्त्र से मृत्यु नहीं है, फिर भी वह भयभीत रहता है। कहता है कि राजा का सबसे बड़ा शत्रु है उसीका पुत्र प्रल्हाद। परंतु उसके मन में राजसिंहासन का लालच है। हिरण्यकशिपु को बताता है कि प्रल्हाद को हुताशन मार सकेगा, राजा क्रोधित होकर वज्रदन्त को ही समागत कर देता है। इसप्रकार अतिमोह विनाश का कारण बन जाता है। महारक्षक के जरूरत के लिए लिया गया पात्र है। राजनर्तकी भी प्रल्हाद को मारने के लिये नियुक्त की जाती है परंतु वह उसे नहीं मारती।

नरसिंह कथा में आज के निरंकुश शासन तथा सामान्य जनता के बीच का द्वंद्व व्यक्त किया गया है।

कलंकी :

नाटक के पात्र है हेरूप, अकुलक्षेम तांत्रिक तथा अन्य पात्र है। हेरूप नाटक का नायक

हेरूप :

हेरूप नाटक का नायक है। नरसिंह कथा के समान पुत्र व पिता की अत्याचार को डटकर विरोध करता है। अपने पिता द्वारा वह दंडित हो चुका है। परंतु वहाँ से भागकर आता है। जनसामान्य को उनका हक दिलाने उसके पिता ने जनसामान्य पर बहुत घोर अत्याचार किये है, उनके अधिकारपर कब्जा कर लिया है। प्रश्न पूछने को मना कर दिया है। यह बात उनके संवाद द्वारा मालूम होती है - कहते हैं कि यहाँ प्रश्न करना महापाप है। अवधूत असल में अकुलक्षेम है जो हेरूप का पिता है। कृषकों के बीच आकर उसे इस बात का पता चलता है कि अकुलक्षेम ने उन लोगों को अंधःकार में रखा। ' हेरूप - ओह ! उसने तुम्हें कुछ भी नहीं जानने दिया। अपने इंद्रजाल में फँसाकर जो नहीं है, वह प्रकट किया। जो अप्रासंगिक है, उसे प्रसंग बनाकर तुम्हारे कंठ में बांध दिया। '[52] यह असलीयत जनसामान्य को मालून नहीं थी। परंतु पिता का यह निरंकुश रूप हेरूप को कबूल नहीं। अपने पिता के प्रति पूर्ण विद्रोही हेरूप नवयुग की नवजागृती एवं उद्‌बुद्ध स्वतंत्र चेतना का प्रतीक है। पिता द्वारा पुत्र की हत्या यह पूरे संसार की असंभाव्य घटना है परंतु नाटककार ने यही घटना का वर्णन नाटक में किया है। हेरूप के रूप में नाटककार की ही आस्था एवं विश्वास ध्वनित हो रहा है, क्योंकि हेरूप अवधूत - अपने पिता - के विरूद्ध जनता को जागरूत कर उन्हें विश्वास दिलाता है कि, तुम भी वही बोधिसत्व हो और कलंकी के लिये तुम स्वयं साधना करो। अपने इस उद्‌बोधन द्वारा हेरूप जनसामान्य को चैतन्य बनाकर चला जाता है। हेरूप निरंकुशता तथा एकाधिकार को नहीं चाहता था। वह सच्चे जनतंत्र और स्वराज्य का प्रबल्य समर्थक है। हेरूप वर्तमान युग की जीवित एवं अपराजित चेतना, संशय बोध, यथार्थ बोध एवं आत्मबोध का प्रतीक है। आधुनिक मिथकीय युगीन चेतना में हेरूप राजनीतिक व्यवस्था में विरोधी शक्तियों का संकेत देता है, जो जनता को स्थापित सत्ता के प्रति सचेत करता है। तांत्रिक राजतंत्र के पोषक धर्मतंत्र का प्रतीक है। सामान्य जनता में अस्तित्व बोध कराने के लिये हेरूप अपना सर्वनाश कर लेता है परंतु आखिर में हार जाता है। उसकी कोशिश बेकार जाती है। जनसामान्य की चेतना को अवधूत ने नष्ट कर दिया है, यह बात उसे मालूम हो जाती है, तो वह अवधूत से सवाल करता है -

परंतु अवधूत उसे मना करता है, फिर भी पूछता है - ' हेरूप - यह शव कब जीवित मनुष्य की भाँति बाते करेगा ? और कहता है - यथार्थ को यदी बदला जा सकता है। तो केवल उसका सामना करके ही। जब औधा पड़ामुख सामने आयेगा। '[53]

हेरूप को दुख है कि सामान्य जनता यथार्थ से पलायन करती है। उन्हें सही मार्ग दिखाना बहुत ही मुश्किल कार्य है। हेरूप यह कार्य करना चाहता है परंतु जब अवधूत को इस बात का पता चलता है तब वह उसे प्राणदंड देता है। हेरूप को प्राणदंड दिया गया यह बात तीसरा कृषक अपने साथियों को बताता है। उन्हें और दुःख होता है। यथार्थ के नजदीक लाने के लिये हेरूप लोगों में चेतना जगाना चाहता है पर सब व्यर्थ जाता है। वह अवधूत को पहचानने की कोशिश करता है। उसके आवाज की तुलना अपने पिता की आवाज से करता है। अपने पिता को स्वार्थी कहता है। पिता के रहस्य को जानने की कोशिश करता है। सामान्य जनता को किसी अज्ञात शक्ति ने ग्रस लिया है, यह बात जानकर दुःखी होता है। अवधूत से बात करते-करते अवधूत उसे बेहोष करता है, और उससे वार्तालाप करता है। हेरूप को अपना बचपन याद आता है। उसके पिता द्वारा दी गयी आज्ञा के अनुसार उसे अंधगव्हार में बाँधकर ले जाया जाता है। उसपर अत्याचार किये जाते हैं। उससे सह न सकने के कारण हेरूप वहीं से भागकर आता है परंतु कलंकी नगरी में आकर भी जब वह प्रश्न ही पूछता है, तो फिर उसे केवल अंधःकार में नहीं डालते तो उसे मार डालते हैं। उसके हृदय पर चोटे होती हैं।

कलंकी का यह पात्र खंडित व्यक्तित्व के रूप में उभारा गया है। हेरूप कभी भी अपने उद्दिष्ट पर नहीं पहुँचता, वह भरसक प्रयत्न करता है, कि जनसामान्य को उनके मूल अधिकार मिले परंतु सामान्य जनता उसके दिल की तडफ को नहीं पहचानते। सामान्य जनता आलसी, अंधविश्वासी, परंपराग्रस्त है। उन्हें सुधरना हेरूप के बस की बात नहीं। बहुत क्षत-विक्षत है हेरूप का हृदय। परंतु उसकी दया किसी को भी नहीं आती। जनसामान्य के लिये वह अपनी पूरी ताकद का प्रयोग करता है, परंतु असफल हो जाता है। हेरूप के चरित्र का पर्यवसन मृत्यु में ही होता है, यह बात बहुत चिंताजनक है। खंडित व्यक्तित्व केवल अपनी आधी जिदंगी ही ठीक ढ़ंग से बिता सकती है, परंतु यहाँ हेरूप अपनी पूरी जिदंगी विरोध, दुःख तथा दूसरों को सचेत करने में बीताता है। और इतना करने पर भी हर जाता है, मृत्यु को पाता है। यही उसके जीवन की विडम्बना है। आधुनिक परिवेश में राजनीतिक क्षेत्र में ऐसा उदाहरण कम ही देखने को मिलेगा। हेरूप निर्भिक है इसलिये अपराजित होना

चाहता है,परंतु उसके पल्ले पराजय ही आता है।जो तारा को मंजूर नहीं। तारा उसके बचपन की सखी है। वह उसको साथ देना चाहती है। परंतु नहीं दे सकती। हेरूप के चरित्र की पराजय वर्तमान समाज में निहित है। वर्तमान समाज ही जिम्मेदार है हेरूप की मृत्यु का।

अवधूत :

नाटक का पात्र अवधूत वास्तव में मानव नहीं है, वह तो एक प्रेतात्मा है। अकुलक्षेम एक निरंकुश शासक है। अकुलक्षेम के प्रेतात्मा को हीन जनता ने ही फिर से शासक बना दिया है। अवधूत अर्थात अकुलक्षेम हूणों के आक्रमण से राष्ट्ररक्षा में असफल होता है और आत्महत्या करता है। परंतु अपने निरंकुश अस्तित्व को अमर बनाने और भविष्य में भी ऐसे ही शक्तिशाली निरंकुश बने रहने के लिये अपने वीरतापूर्ण युद्ध तथा देव वृक्ष की काल्पनिक कथा प्रचारित कर अवधूत के रूप में उसी नगर में लौट कर शव-साधना करता हुआ जनता पर आतंक का शासन करता है। जनता प्रत्यक्ष एवं यथार्थ से सदा विरत रहे, इस उद्देश्य से वह सुख समृद्धि की काल्पनिक कथा (कलंकी अवतार) प्रचारित करता है। इस प्रकार उसने अपनी सारी प्रजा को पूर्व सामंत रूप (अकुलक्षेम का) के समान वर्तमान (प्रेतात्मा) रूप में भी वैसा ही आत्मबोध हीन, यथार्थ से दूर, निरन्तर आलसी, अन्धविश्वासी, परिवर्तन से भयभीत प्रश्नहीन, बनाता है। वह अपने मानव-रूपधारी प्रजा को जीवित शव का रूप बनाकर शव-साधना के रूप से पूर्ववत आतंकपूर्ण शासन करता है। अवधूत के प्रेतात्मा के रूप को कोई नहीं पहचान पाता। सभी जनता उसे अपना शासक, अकुलक्षेम ही समझते हैं। प्रेतात्मा अवधूत जनता को अपने चंगुल में फँसाये रखता है। उन्हें प्रश्नहीन बनाकर खुद को एकाधिकारी स्थापित करता है। अवधूत हेरूप के सामने नहीं आता। और जब आता है, तब ताड के गोल पंखे से अपना मुँह छिपाता है। अपने पुत्र को पहचानता है, उसे भाग जाने को कहता है। उसपर सम्मोहन विद्या का प्रयोग करता है। हेरूप का कहना है कि -

" तू नहीं जानता मेरी शक्ति। तू जो कुछ मुझसे माँग मैं इसी क्षण तुझे दे सकता हूँ। ' हेरूप को सुलाकर उससे बाते करता है अपना सही रूप प्रकट करता है -'अब देख मेरा मुख । पहचान मैं कौन हूँ ? हाँ, मैं तेरा वही पिता हूँ। उस गिरी-शिखर से अब यहां भूत बनकर आया हूँ। मुझे आशंका थी, तू कभी इस नगर में वापस आयेगा, और यहाँ मेरे विरूद्ध विद्रोह फैलायेगा। यह मेरे लिए असह्य था। मैं मरकर भी तुझे सफल नहीं होने दूँगा। "[54]

अकुलक्षेम को केवल निरंकुश शासन तथा एकाधिकार चाहिये। उसे अपने पुत्र के मृत्यु की कोई चिन्ता नहीं। उसकी जिंदगी में इससे कोई फरक नहीं होगा, परन्तु वह अपने प्रेतात्मा का दोषारोपण जनतापर लगाता है। समाज को अवधूत की सच्चाई मालूम होती है। हेरूप मरते समय तीसरे कृषक को सबकुछ बता देता है। और जनता सजग हो जाती है। उसपर आरोप लगाते हैं। कहते हैं हमारे लोगों को मारकर ही तुने शवसाधना की। सारे वृद्ध की हत्या करायी, झूठे प्रचार किये, विश्वासघात किया, भ्रम फैलाये, आतंकवाद फैलाया। सभी लोगों को झूठे जाल में फसाया। ये सारी बातें अवधूत स्वीकार करता है। और कहता है - तुम मुझे मारना चाहते हो पर यह असंभव है, कहता है - ' हट जाओ। मेरे और पास आने का प्रयत्न मत करना। मैं तुम सबसे अपने जन्म के लिए घृणा करता हूँ - उसी ने मुझे पशू बनाया, उसी ने मुझसे आत्महत्या करायी। वही मुझे प्रेत बनाकर फिर यहाँ ले आया। दूर हटो। तुम्हें देखकर मेरी इच्छा थूकने की होती है। मेरी मुख का स्वाद भयानक है। '[55] अपने अस्तित्व का दोष आलसी तथा अन्धविश्वासी जनता पर लगाता है। कहता है - मैं तो हूँ प्रेतात्मा। मुझे किसी के सुख-दुख से क्या लेना देना। केवल मैं शासक बना रहूँ और मेरे अधीन सारी जनता रही, कोई मुझसे प्रश्न न पूछे, मेरे कार्य में बाधा न ड़ाले, इसके अतिरिक्त मुझे और क्या चाहिये? अपने सामन्तत्व का उत्तराधिकारी हेरूप को बनाना चाहता है परंतु हेरूप उससे विद्रोह करता है और इसलिये अवधूत हेरूप को मृत्यु की सजा देता है। उसे समाप्त कर देता है। जनता जब यह जान लेती है यह तो केवल प्रेतात्मा है, वह भी अकुलक्षेम का। प्रेत तो जनता उसे मारने को दौड़ती है, परंतु प्रेतात्मा को कैसी मौत ? उस आत्मा को मुक्ति ही आखरी पर्याय है। यह मुक्ति उसे हेरूप दिला सकता था परंतु अकुलक्षेम ने हेरूप की हत्या कर डाली है, इसलिये अब इस आत्मा को मुक्ति नहीं, अब उसके नसीब में केवल भटकाव है।

तारा :

तारा का चरित्र और तीसरे कृषक का चरित्र अस्तित्वबोध से वाकीफ है। जीवन बोध और अस्तित्व बोध को पाने पर वे अवधूत का विरोध करते हैं। तारा हेरूप की बालसखी है। पहले तो वह तांत्रिक के मायाजाल से तथा अवधूत में संमोहन से प्रभावित होती है। अर्नगल शब्दों का अन्धानुकरण भी करती है। परंतु हेरूप के अभिषेक के समय जब तांत्रिक गगनतुला पर उसके कौमार्य को अपवित्र बनाता है, उसके पीठ पर बैठकर उसे पवित्र करने का ढोंग रचाता है, तब वह सजग हो जाती है।

परंतु तब तक बहुत कुछ घट चुका होता है। हेरूप को विक्रम विहार भेजने की अर्थात - मृत्यु का दण्ड - आज्ञा दी जाती है। वह ऐसी हालत में न हेरूप को रोक पाती है, उसके साथ भी जा सकती है। तारा यह जानती है कि, हेरूप निर्भिक एवं अपराजित है। अंत में जब वह अवधूत का विरोध करती है - वही हेरूप बन्द आत्माओं को मुक्त करेगा ... वह नहीं आया तो शव भरे द्वार नहीं खुलेंगे। और कहती है - ' यह क्या कर डाला। तुझे अब भी शव की आवश्यकता है। तेरी शवसाधना - तो पूरी हो चूकी थी। सुन ले वृद्ध के इसशव को अपने कंधे पर उठाये, नगर की सीमा पर खड़ी मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगी। '[56] तारा का आत्मबोध जागृत हो जाता है। जब वह श्वेत अश्व के दौड की आवाज सुनती है और उसकी सुनी पीठ देखकर नगरवासियों को जागृत कर देती है। इसी से उसे आत्मबोध हो गया है ऐसा प्रतीत होता है। वह तंत्र व्यवस्था को बदलने के लिये क्रांति की ओर उन्मुख जनता की प्रतीक है। कलंकी के सभी पात्र आज के सन्दर्भ में सार्थक महसूस होते हैं। तीसरा कृषक जब हेरूप के साथ चला जाता है, तब हेरूप उसे पूरी कथा बता देता है। तीसरा कृषक बताता है - ' वही बोधिसत्व कथा। सब मृग बोधिसत्व थे। सब एक समान थे। सब उसी जैत वन में विहार करते थे - रास्ते पर हेरूप मुझे वही कथा सुनाता जा रहा था, विक्रम विहार के द्वार पर मुझे एकांत में ले जाकर हेरूप ने कहा ' तुम भी वही बोधिसत्व हो। बस, इतना कहकर हेरूप विक्रम-विहार में चला गया। मैं सूर्यास्त होने तक वही बैठा रहा, फिर मुझे सूचना मिली, हेरूप को प्राणदण्ड दिया गया।'[57] इसप्रकार तीसरे कृषक को सत्य का पता चल जाता है, और वह भी जीवन बोध तथा आत्मबोध को जान जाता है। परंतु तारा तथा तीसरा कृषक अवधूत का कुछ भी नही बिगाढ़ सकते। नाटक के सभी पात्र प्रसंग तथा घटनाएँ अपनी चारित्रिक एवं क्रियात्मक परीधि का प्रतिनिधित्व करती है। पुरपीत अकुलक्षेम निरंकुश शासन-व्यवस्था व वर्तमान सन्दर्भ में यथास्थितिवादी किसी भी शासक वर्ग का प्रतिरूप है। तथा हेरूप यथार्थबोध, आत्मबोध एवं उद्‌बुद्ध स्वतंत्र चेतना का प्रतीक है। " डॉ. लाल कृत ' कलंकी ' नाटक का मिथकीय परिघात मूल्य संकट के संशय बोध से जूड़ा है। इसमें संतान-प्रेम के विघटन, अनुभूतियों के द्वंद्व और पिता पुत्र की आस्थाओं के टकराव की जीवन समस्या रूपायित की गयी है। अपने प्रशासनिक स्वार्थों की रक्षा के लिए राजा अकुलक्षेम नव-जागरण के प्रतीक पुत्र हेरूप का वध करवा देते हैं। '[58]

मिस्टर अभिमन्यु :

इस नाटक के प्रमुख पात्र है - राजन, आत्मन, गयादत्त, केजरीवाल, पिताजी तथा विमल तथा अन्य पात्र भी है।

राजन :

राजन नाटक का प्रमुख पात्र है। महाभारत के पौराणिक चरित्र को नये संदर्भ में प्रस्तुत करके समकालीन परिस्थितियों में आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी और विडम्बना को उद्धारित किया है। पुराण के अभिमन्यु ने सचमुच की लड़ाई लडी थी, वह सचमुच बाहर निकलना चाहता था। लेकिन मिस्टर अभिमन्यु बाहर नहीं निकलना चाहता, उसे भ्रांति है कि वह बाहर निकलना चाहता है। इस भ्रांति को बनाये रखने के लिए वह झूठी लड़ाई भी लड़ता है। वह त्यागपत्र देना चाहकर भी नही देता। वह पूँजीपति तथा भ्रष्टाचारियों के प्रतीक केजरीवाल का गोदाम सील करता है। परंतु ' उपर ' के आदेश की अवहेलना नहीं कर पाता। व्यवस्था को नापसन्द करता हुआ भी उसे तोड नहीं पाता। राजन विभाजित व्यक्ति की समस्या को उठाता है। आदर्शवादी आत्मन राजन के व्यक्तित्व का वह अंश है जो नायक अभिमन्यु को चक्रव्यूह से बाहर निकलने को प्रेरित करता है। राजन जब अफसरी करने का निर्णय लेता है उसी दिन से राजन आत्मन के व्यक्तित्व का अंश खो देता है। कभी कभी तो ऐसा महसूस होता है कि राजन एक परिस्थिती का मारा चरित्र है, बेचारा चरित्र है जिसकी कोई सहायता नहीं करता। राजन के विश्वास तथा मूल्य पूरे नाटक में टूटते हैं, परंतु जब वह पत्नि की गोद में लेटा हुआ महसूस करता है कि - वास्तव में यही नरक है, तभी उसका आत्मविश्वास बनता हुआ नजर आता है - परंतु परिस्थिती के सामने विविश होकर वह अपने आत्मा को मारकर ही जिवित रहता है। परंतु आत्मा को मारना इतना आसान कार्य नहीं, वह अपने जमीर को साक्षी रखना चाहता है और पुरानी बातें याद करता है। पत्नि से कहता है - ' मैं तब से भूल ही गया, मुझे तब इतना नहीं पता था कि यहाँ हर मूल्य की जड़ में वही गुलामी है। आज्ञाकारी होना किसी ऐसे चक्रव्यूह में पैर रखना है, मुझे इस धोके का पता नहीं था। '[59] बाद में वह पछताता है कि मैंने यह नौकरी स्वीकार क्यों कर ली ? पर पिता का भय मन में छिपा है और पत्नि का डर भी है। राजन सतत भयभीत, संशयी तथा आत्मसंघर्ष में डूबा हुआ रहता है। पिताजी आकर केजरीवाल के यहाँ चले जाते हैं तो वह घबरा जाता है, पत्नि से पूछता रहता है -

राजन : पिताजी यहा आये कैसे थे ? ट्रेन से या .....

राजन : वह घर से यहां केजरीवाल की ही गाडी से आये यह तुमने भी मुझे नहीं बताया ...

विमल : केजरीवाल की पिताजी से जान-पहचान है।

राजन :' तो - यह टैक्स केस में वकालत करने गये है। अगर कुछ ऐसा-वैसा किया तो..[60]

हरपल हर घडी वह अस्वस्थ रहता है। राजन का पात्र मनोवैज्ञानिक पात्र के रूप में उभरा है। कई बार राजन एकालाप करके अपने आप से उलझ जाता है। उसे कोई दूसरा उत्तर देने के लिये नहीं मिलता; अपने आप से बडबडाता रहता है। गयादत्त तथा केजरीवाल उसपर पूर्ण रूप से छाये हुए हैं। गयादत्त आत्मन की हत्या कर देता है, तब से राजन और भी चक्रव्यूह में फंस जाता है। "खुद हारकर फिर अपने एक-एक अंग से सड़ने का नाटक। आत्मन से तेरा कोई संबंध नहीं। वह तुझ से तभी छुट गया जब तू यहाँ घुसा। उसी के बाद ही मैं जन्मा हूँ। आत्मन, गयादत्त, राजन केजरीवाल सबसे अपने चारों ओर नकली लड़ाई का एक चक्रव्यूह ...

राजन : मैं दिन रात लड़ता रहा। [61]

अपनी ईमानदारी का वास्ता देकर अपनी ताकत अजमाना चाहता है। परंतु ताकत तो केवल बातूनी है, क्योंकि अगर सच्चे दिल से चाहा होता तो वह इस चक्रव्यूह से बाहर निकल पाता। इस्तीफा देकर - नौकरी छोड़ सकता था। परंतु कुटुंब की लालच बडप्पन की आशा ने उसे निकम्मा कर दिया। आखिर में त्यागपत्र फाड़ देता है और चार्ज सर्टिफिकीट फार्म पर दस्तखत कर देता है। वास्तव में राजन एक अफसर है, अंग्रेजी पर उसका प्रभुत्व है। केजरीवाल जैसे बड़े राजनीतिज्ञों को वह ' शट् अप् या गेट आऊट कर सकता है। जब तक उसकी आँखों में ईमानदारी की धुँध थी तब तक उसने ऐसा किया भी, परंतु जब वह स्वार्थ के सामने झुक जाता है, तब वह उन्हीं भ्रष्टाचारियों से आदब के साथ पेश आता है। यही उसकी विविशता है। नाटक के अंत में वह नौकरी में ही रहने का निर्णय कर लेता है तब डिनर पार्टी में बड़े सज-धज कर आता है और कहता है देखिये मैं आप सब का हूँ। ' बस यही शब्द उसके खोखलेपन का रहस्य उद्घाटित कर देते हैं। एक बार उसने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की गुलामी स्वीकार ली तो फिर उसके हाथ में कुछ भी नहीं रह जाता। केवल दूसरों को सहन करना ही उसके बस में रह जाता है। मिस्टर राजन संकटों से घिर जाता है और जब निर्धारित अंत सामने आता है तो सहम सा जाता है। पर कुछ नहीं कर पाता। राजन बहुत प्रखर है और सब इसी को कठहरे में

खड़ा करके जाइँता-परखता है। उसमें गुस्से की भडक भी दिखायी पडती है, जिससे वह सारे बन्धन तोड़ देना चाहता है। उसे अपनी नियती का पता है, शायद वह जानता है कि उसका अन्त क्या है, इसलिये जितने जोर से भड़काता है उसी अनुपात में उसकी लाचारी उभरती है। राजन दो राजनीतिज्ञों- गयादत्त तथा केजरीवाल के बीच जूँझता रहता है। शुरू शुरू में उसकी पत्नी उसके साथ थी परंतु जैसे जैसे महौल तरीका बदल जाता है वैसे वैसे वह भी बदल जाती है। राजन भागने की कोशिश करता है, परंतु भाग नहीं सकता। समझ जाता है कि हर विश्वास जेल खाने की तरह है तथा हर मूल्य किले बंदी की तरह बंदीस्त है, जिससे राजन आत्मरक्षा नहीं कर सकता। राजन की समस्या सरकारी अफसर की समस्या है जो आज के हर अफसर की है। राजन पहचान जाता है कि उसका जीवन तथा समाज एक खोखलापन है परंतु वह जीवित रहना चाहता है। अपने ' पोस्ट ', ' ओहदे ' के लिये और यही पर राजन अपना स्वत्व खो देता है। अपने आप को अपनी ही नजर में गिरा देता है। अपने अस्तित्व के सिवाय दूसरा कुछ भी विचार नहीं करता। इन सब बातों का जिम्मेदार केवल राजन ही है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर राजन का चरित्र उच्च कोटी/ साबित हो गया है। बेजोड़ चरित्र प्रस्तुत किया गया है। राजन के बारे में डॉ. दयाशंकर शुक्ल का कथन समीचिन ही है - ' मिस्टर अभिमन्यु चरित्र के स्तर पर आज के वेतनयोगी और सुविधा योगी मनुष्य की विडम्बनाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। जीवन की गहनतम अनुभूति कराने के लिए ऐसे यथार्थ चरित्र-चित्रण की आज आवश्यकता है जो आत्मनिष्ठा अस्वाभाविक भावुकता और अशरीरी छायावादिता से बचाव दे सकें। ' ' मिस्टर अभिमन्यु ' का राजन ऐसी ही चरित्र है। '[62]

आत्मन :

आत्मन राजन के मन का प्रतिबिंब के रूप में प्रस्तुत किया गया पात्र है। आत्मन राजन के व्यक्तित्व का वह हिस्सा है जो राजन की अफसरी तथा तरक्की के समय टूट गया था। वास्तविक लड़ाई राजन की नहीं आत्मन की है। जिन्दगी राजन की नहीं आत्मन की खतरे में है। राजन नहीं मारा जाता, आत्मन मारा जाता है। वैसे देखा जाए तो आत्मन की मृत्यु ही राजन की मृत्यु है। फैन्टसी का इस्तैमाल करते हुए डॉ. लाल ने दोनों रिश्ता बहुत ही कारीगरी के साथ उद्घाटित किया है।

' राजन : तुम हँस पड़े न। तुम मुझे नहीं जानते।

आत्मन : कैसे जानता ? तुम इधर नौकरी में आये, मैं उधर राजनीति में छुट गया ... तुम इधर

जी-जान से घर-गृहस्थी सजाने लगे, दिन-रात नौकरी करते रहें, मैं उधर विरोध में जा फंसा ... रास्ते में कई बार देखा था, तुम मुझसे आंख बचाये भागे चले जा रहे थे - मैंने कई बार पुकारा। कई बार तुम्हे ...। [63]

आत्मन राजन से कई बार कहता है कि स्वतंत्रता के बाद ही आजादी की लड़ाई शुरू होती है। तुम्हारी चेतना मुझमें थी, परंतु तुम इसे पहचान नहीं पाये। आत्मन की हत्या कर दी जाती है, परंतु फिर भी राजन जीवित है यही तो नाटक के पात्रों की विडम्बना है। आत्मन का व्यक्तित्व राजन के व्यक्तित्व से सुलभ रूप में बैठता था, परंतु राजन ने उसे स्वीकृत नहीं किया। राजन की आत्मा का प्रतीक ही आत्मन है। गयादत्त तथा आत्मन के बीच में वार्तालाप होता है। दोनों आपस में लड़ते हैं। एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। गयादत्त उसे चिढ़ाने के लिए समाज की शोभा कहते हैं, परन्तु आत्मन गयादत्त के व्यवहार को गुंडाशाही कहकर उसका अपमान करता है। आत्मन को मालूम है, गयादत्त तथा केजरीवाल जैसे लोगों ने मिलकर समाज में दिवारे बनायी है जिन्हें तोड़ना आत्मन जैसे उद्दिष्टवादी ही कर सकते हैं। गयादत्त को काला पहाड कहता है, और अब उसके अत्याचार सहने के परे चल गये हैं ऐसा कहता है। आत्मन गयादत्त को गुंडाशाही एवं राजन को नौकरशाही कहकर अपने आप को दोनों के बीच पिसा कर नाश कर देना नहीं चाहता। इसी चक्रव्यूह से निकलने के लिये उसके पास एक ही पर्याय है - आत्महत्या। वास्तव में वह आत्महत्या नहीं करता अपितु गयादत्त उसे मार डालता है। आत्मन की मौत वास्तव में राजन की मौत है। व्यक्ति के आत्मा की मोत उसके पूरे व्यक्तित्व को ही नष्ट कर देती है, परंतु राजन की आत्मा मर जाने पर भी वह जीवित रहता है यह राजन तथा आत्मन के जीवन की विडम्बना है। आज के आधुनिक राजनैतिक परिवेश में तथा नौकरशाही में राजन जैसे मरे हुए जमीरवाले व्यक्ति अनगिनत् मिलेंगे। उनके शरीर को मौत नहीं आती इसलिये उन्हें कहना होगा परंतु असल में आत्मा, जमीर नाम की कोई चीज उनके पास नहीं होती, यही तो रोना है।

गयादत्त :

गयादत्त एक सफल राजनीतिज्ञ है। वह किसी भी अपराध को ठीक ढ़ंग से छिपाना जानता है। किसके साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये यह बखुबी पहचानता है। उनके साथ कोई भी चालाखी नहीं कर सकता। किसी को मिट्टी में मिलाना या खत्म कर देना उसके बाये हाथ का खेल

है। आत्मन के बारे में, राजन के बारे में राजनीति के बारे में सबकुछ जानते हैं। गयादत्त। परंतु आत्मन कहता है कि गयादत्त को सब कुछ पता है परन्तु अपने मौत का पता नहीं। वह एक गहरा व्यंग्य है गयादत्तपर। सारे दुनिया का लेखा जोखा करनेवाले को अपने ही बारे में कुछ भी मालूम नहीं। राजन को केजरीवाल के नेकी की हकिकत बताते हैं तो राजन झट जबाब देते हैं कि इसलिये टैक्स नहीं दिया। गयादत्त राजन को आज्ञा और इच्छा का फर्क बता देते हैं - टैक्स वसूल करने को आज्ञा सरकार की है, परंतु गयादत्त तथा केजरीवाल की इच्छा नहीं है टैक्स देने की। तो इच्छा के सामने आज्ञा को हार जाना पड़ता है। गयादत्त, राजन तथा आत्मन के संवाद दृष्टव्य है -

राजन : यहाँ मैं सुरक्षित हूँ।

आत्मन : पर मैं सुरक्षित नहीं।

राजन : यह मेरी जिम्मेदारी नहीं।

गयादत्त : मेरी भी नहीं।

आत्मन : मेरी भी नहीं। [64]

सब अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर टाल देते हैं। गयादत्त राजन से कहते हैं कि, तुम तो बड़े अफसर हो - तुम्हारे पास नीजि शक्ती थी और नीजि शक्ति के स्तर पर ही एक दूसरे से बड़ा होना हमारा लक्ष्य था। इसी लक्ष्य के आधारपर मैं राजन और आत्मन से बड़ा हो गया हूँ। गयादत्त अवसरवारिता का लाभ उठाकर ही अपने पूरे कार्य सफल कर देता है। राजन गयादत्त से घृणा करता है, परंतु उसी के चंगुल में फंस गया है। गयादत्त का काम है दूसरे राजनीतिज्ञ अथवा राजन जैसे बड़े अफसरों के ताकत की डोर का पता लगाना। उसके रोजमर्रा जिंदगी की कमजोरीयों का पता लगाना। पढ़े लिखे लोग केवल अपने नौकरी के लिये कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। आत्मन के लिये मुश्किल खड़ी कर देना तथा राजन को रास्ते में लाना यही एकमात्र उद्दिष्ट गयादत्तजी के सामने हैं। गयादत्त राजन के व्यक्तित्व का ही दूसरा अंश है। राजन को आत्मन से नष्ट करके गयादत्त बताने में सफल हो जाता है क्योंकि, वह आत्मन की हत्या कर देता है। राजन केवल एक चलती-फिरती लाश इतना ही महत्व रहता है। राजन के इस रूप का जिम्मेदार है गयादत्त।

केजरीवाल :

केजरीवाल एक पूँजीपति का प्रतीक है। केजरीवाल के बड़े-बड़े बिझनेस है, बड़े-बड़े

गुदाम हैं, मिलें है। वह कभी भी टैक्स नही भरते। गयादत्त जैसे सफल राजनीतिज्ञो को एवं राजन जैसे अफसरों को अपनी मुठ्ठी में रखता है। पूरे नाटक में रंगमंच पर केजरीवाल को प्रस्तुत नहीं किया गया। जिस प्रकार उत्तरयुद्ध में द्रौपदी को उपस्थित नहीं किया था। केजरीवाल के बारे में पिताजी, राजन, आत्मन तथा गयादत्त केवल वार्तालाप करते हैं, जैसे पिताजी विमल से बातचीत करते हैं - कहते हैं - ' क्या बयान करूँ ? वकालत खाते से घर पहुँचा ही था, केजरीवाल मिल का मॅनेजर गाड़ी लिये हुए दरवाजे पर हाजिर ।'[65] पिताजी पूछते हैं कि तुमने केजरीवाल को बाहर क्यों निकाल दिया था ? गयादत्त राजन से कहते हैं - '' मेरा खयाल है केजरीवाल के बारे में मंत्रीजी ने जरूर आपसे कुछ बाते की होगी। और आगे कहते हैं कि केजरीवाल बेहद नेक आदमी है। राष्ट्रीय संग्राम में उनकी बहुत चर्चा है। तथा राजन के घर के बाहर केजरीवाल का जनरल मॅनेजर खड़ा है। परंतु राजन किसी से नहीं घबरा था। कहता है - 'अब तक आप के दोस्त केजरीवाल की कॉटन मिल का गोदाम सिल कर दिया होगा। '[66] राजन के पिताजी केजरीवाल के यहाँ चाय पर गये हैं, यह बात उसकी पत्नी विमल राजन से - अपनी पति से कहती है, तो राजन बहुत चिढ़ता है। विमल कहती है कि पिताजी की ओर केजरीवाल की जान-पहचान है। परंतु राजन कहता है कि उसके पिताजी के समान बीसियों वकील उनके यहां काम करते हैं। और केजरीवाल की कोठी पर फोन लगाता है। परंतु पिताजी भी कहते हैं कि केजरीवाल इतने बुरे आदमी नहीं है। परंतु राजन टेलिफोन पर बताता है कि केजरीवाल की कोठी में अभी रेड करके ' टेप रिकार्डर ' हाथिया लो। राजन, पिताजी, गयादत्त आदि के संवाद द्वारा ही केजरीवाल के चरित्र का उद्‌घाटन होता है। राजन कहता है कि केजरीवाल ने आज तक टैक्स नहीं भरा तो उसका असली व्यक्तित्व दर्शकों के सामने उद्‌घाटित होता है। पूँजीपति वाद को रोग की समान फैलाने वाले केजरीवाल जैसे व्यक्तित्व को समाप्त नहीं किया गया तो एक वह नासूर बन जायेगा।

विमल :

विमल राजन की पत्नि है। वह शुरू शुरू में राजन का साथ देती है परंतु जब माहौल हैसियत बदल जाती है तो वह भी बदल जाती है। अपने फयूचर को, अपने बेटों के फयूचर का प्रश्न राजन के सामने रखकर उसे हतप्रभ कर देती है। राजन को चक्रव्यूह से निकालने की बजाय अधिक फंसा देती है इस कार्य में अपने ससुर का सहारा लेती है। परंतु राजन को सही मार्ग में लाने के लिए

अपने आपको जिम्मेदार मानती है। कहती है -

' विमल : पिताजी की इच्छा आज जाने को नही थी। मैं उनके पैर छूने बढ़ी, उन्होंने भारी आखों से मुझे आशिष दिया, ' बहू, सब कुछ तुम्हारे ही अधिकार में है। ' इससे अपना अहं जताती हुयी राजन को और ही चक्रव्यूह में फंसा देती है। और फिर राजन के चक्रव्यूह में फंसने का दोषारोपण भी उसी के सर पर थोंपती है। क्योंकि जो जो बातें विमल करती रही, उसका विरोध राजन ने कभी भी नही किया। और राजन नौकरी में फंसाकर खुद एनवायरमेंट के पीछे पागल हो गयी। पिताजी अपने बेटे को कलक्टर बनाना चाहते थे, सो राजन कलक्टर बन गया, परंतु उसका लाभ गयादत्त तथा केजरीवाल जैसे लोगों ने लिया। जब पिताजी को इस बात का पता चलता है तो अपने बेटे को समझा देते हैं। राजन जब पिताजी को बता देते हैं कि केजरीवाल कितने बूरे आदमी हैं और उसने केजरीवाल के गोदाम को लॉक कर दिया है। तो वे कहते हैं कि केजरीवाल काफी पहुँच के आदमी है। कहते हैं -

' पिता - तुम्हें भी वैसे ही करना चाहिये था। (उठ जाते हैं, कोट-टाई उतारते हैं) मेरा मतलब जैसा जमाना हो। उसी के मुताबिक चलना चाहिये। आखिर और लोग भी तो आये थे। वह बात और है कि तुम अपनी इमानदारी और बेदाग हुकूमत के लिये पूरे सूबे में मशहूर हो। यह मेरे लिये फक्र की बात है। मगर अब यह तुम्हारी शान के खिलाप है कि एक मामुली बात पर ऐसी नौकरी से ' रीजाईन कर दो ' लोग क्या कहेंगे ? '[67]

पिताजी को अपने बेटे की उसूलों से जादा फिक्र लोगों के बाते बनाने की है। वह अपने बेटे को उसी ओहदे पर बना रहने के लिये कहते हैं और जब कलक्टर से कमीश्नर बनने का चान्स आता है तो उसे भी स्वीकार करने को कहते हैं। वे दुनियादारी को निभाना अच्छी तरह जानते हैं और राजन को अपने बेटे को, भी दुनियादारी निभाने की सलाह देते हैं।

नाटक में जितने भी पात्र है वे सब अलग-अलग चरित्र होकर भी अलग-अलग तरह के ' मिस्टर अभिमन्यु ' है, और सब अपने अपने चक्रव्यूह में बंदी होकर सब एक दूसरे के लिये चक्रव्यूह बनाते हैं। पौराणिक पात्र, सन्दर्भ लेकर अधुनिक राजनैतिक परिस्थिती का उद्‌घाटन करके डॉ. लाल ने मिथक की पारस्पारिकता में समकालीन जिन्दगी की संवेदना प्रस्तुत की है। नाटक की चरमसीमा वही है जहां आत्मन के रूप में मरकर भी राजन जीवित रहने के लिए अभीषप्त है। वस्तुतः गयादत्त की अवसरवादीता, आत्मन की सिद्धांतवादिता और व्यवस्थापन के चक्रव्यूह में फंसे राजन की चीख

पुकार हमारे वर्तमान जीवन के खोखलेपन का ताना-बाना प्रस्तुत करती है। डॉ.लाल ने मिथकीय पात्रों की संवेदना द्वारा आधुनिक जीवन की रूपरेखा हमारे सामने खींची है।

एक सत्य हरिश्चंद्र :

' एक सत्य हरिश्चंद्र ' के पात्र है लौका, देवधर, जीतन, राहुल शव्या तथा अन्य पात्र। ' हरिश्चंद्र का मिथकीय संदर्भ प्रख्यात है। श्रीमद् भागवत के नवम स्कन्ध के सप्तम अध्याय में इस लोग विश्रुत कथा का स्त्रोत है। इसी कथा का चरित्र नायक हरिश्चंद्र इस नाटक में लौका के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस हरिश्चंद्र को उसकी कोरी पौराणिकता से हटाकर उसे आधुनिक संदर्भों में प्रकट किया गया है। इसलिये नाटक का चरित्र लौका केवल हरिश्चंद्र नहीं। ' नहीं, ' सत्य हरिश्चंद्र ' भी नहीं बल्कि एक (नया) सत्य हरिश्चंद्र है। '[68]

लौका :

नाटक का प्रमुख पात्र लौका समाज के जाति-पाति के भेद को मिटा देना चाहता है। इस नाटक में नाटक के अन्दर नाटक खेला जा रहा है। लौका हरिश्चंद्र के चरित्र को उभारता है। लौका की दृष्टि में हरिश्चंद्र का सत्य वही है जो जीवन में जीया जा सके, भोगा जा सके, या अनुभूत किया जा सके। उसकी दृष्टि में जितना जो कुछ जीवन में जीया जा सके वही है सत्य हरिश्चंद्र। वह यथार्थ की सत्य को ही पहचान कर सत्य मानता है, और उसी से लोगों को परिचित कराना चाहता है। लौका पहचानता है कि उन्हें तथा उसके साथियों से गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है। कहता है गुलाम भी कभी मालिक हुआ है ? जनता को अब गुलामी नहीं चाहिए, अपना नीजि हक चाहिये। अब दलित जनता को ज्ञान हो गया है कि सत्य क्या है और ज्ञान आदमी की अन्तरात्मा से जागता है। ज्ञान परदों को तोड़ता है। आज तक जनता पर देवधर के काले कारनामों से पर्दा पड़ा था अब वह टूट चुका है। देवधर के काले कारनामें अब जनता को ज्ञात हो चुके हैं। बड़ों से विरोध करना पाप है यह बताया है, परंतु विरोध क्या है यह नहीं बताया गया। सत्यनारायण की कथा न सुनने से पाप लगता है, परंतु सत्यनारायण की कथा क्या है यह कभी भी नहीं बताया गया। लौका जानता है कि देवधर को केवल एकाधिकार, लालसा है उसके लिए देवधर कुछ भी कर सकता है। कहता है - " हरिश्चंद्र - अतृप्त वासनाओं का नाम मन है। और यही मन दुख की सृष्टि करता है। .... यह तो दृश्यमान जगत है, इसके भीतर ही एक अदृश्य जगत है। दोनों गतिमान है। यहाँ हर वस्तू सब की है और

कोई भी वस्तु किसी की भी नहीं है। यहाँ देकर ही पाया जाता है और त्यागकर ही भोगा जाता है। "[69] लौका जब नाटक के नाटक में हरिश्चंद्र का नाटक खेलता है तो अपना अनुभव बताता है और कहता है कि अनुभव सनातन होता है। केवल भोगनेवाला नया व्यक्ति होता है। इस नाटक से देवधर उब से जाते हैं। लौका की बात गांव के सब लोग मानते हैं। लोगों की मुक्ति में अपनी मुक्ति है यह बात बहुत ही अच्छे ढंग से कहता है। लोगों से संघर्ष करके, शांति से जीतने से शांति से जीया भी जा सकता है। हरिश्चंद्र, श्व्या, तथा रोहित काशी के बजार में बेचे जाते हैं नाटक में। तो लौका शैव्या अर्थात पद्मा काशी के बजार में बेचे जा रहे हैं, उस वक्त शैव्या कहती है, पहले मैं भी जाना चाहती हूँ परंतु लौका के रूप में हरिश्चंद्र कहता है कि जब तक खरीदने वाला रहेगा सब को बिकना पड़ेगा, उसे भी जो खरीद रहा है। इस खरीदी-बिक्री में सब को अपनी अपनी रक्षा करनी पड़ेगी। विश्वामित्र अर्थात जीतन उसे अहंकारी कहता है तो लौका कहता है कि अहंकार की पहचान तर्क है। और तर्क की जड़ में भय छिपा हुआ है - जिसमें केवल अपूर्णता है। सब को समान देखनेवाला ही सब से मुक्त और सब से अजीब है। मुक्ति पाने के कई तरीके हैं परंतु एक को प्राप्त करने के बाद अभ्यासी व्यक्ति दूसरा तत्व पाने के लिये बेचैन होता है।

हरिश्चंद्र नाटक के अंत में देवधर इंद्र का पार्ट करके उसे स्वर्ग भेज देता है। परंतु लौका कहता है कि मुझे झूठा स्वर्ग नहीं चाहिये, मैं इसी धरती पर इंद्र के साथ देवधर के साथ जीऊँगा। देवधर को कहता है कि इसी तरह तूने हमें झूठे बाजार में बेचा है, स्वर्ग को लालच दिखाकर। कहता है गांव में तुम इंद्र बने बैठे मुझ जैसे लौका को स्वर्ग भेजने के लिए परंतु सत्यनारायप की कथा है कि हरिश्चंद्र सब कुछ भोगकर भी अपने पृथ्वी पर खड़ा है।

' लौका - सूनो हरिश्चंद्र का संवाद - ना मैं अमर हूँ ना ही मैं स्वर्ग गया, जीवनभर नरक की आग में जलकर दी अपने चरित्र की परीक्षा। तुम कहते हो मैं सफल हो गया, सब की परीक्षा में । पर मुझे कल फिर परीक्षा देने होगी अपने सत् की। और आज के परीक्षा फल कल नहीं आयेगा काम। इस लिये मुझे यही रहना होगा कल की परीक्षा के लिये। '[70]

देवधर उसके खिलाफ भडकता है, परंतु लौका कहता है कि जहां इंद्रासन है वहाँ हरिश्चंद्र का स्वर्ग नहीं होगा। इंद्र को कहता है कि आज तक हरिश्चंद्र ने सत्य की परीक्षा दी परंतु अब इंद्र को भी सत्य की परीक्षा देनी पड़ेगी। क्योंकि जब तक इंद्र या देवधर जैसे केवल सत्य की परीक्षा लेने वाले होंगे तो हरिश्चंद्र केवल बनाया जा सकता है, परंतु अब बनने और होने का

मर्म समझ में आ गया है। अब तक हम चुप रहे तो हम ही अपना विरोध करते रहें। आज तक तुम्हारे हाथों अपने आप को सौंप कर बहुत बड़ा अपराध किया है। अब यह अपराध इसके आगे नहीं होगा। अब हम तुम्हें अपना मुखिया मानने से इन्कार करते हैं। अब लोगों का राज्य रहेगा। प्रजा राज्य करेगी। कोई राजा नहीं। सब समान अधिकार के भागी होंगे। अपने उपर, गरीबों के उपर, नीच जाति के उपर किये गये अत्याचार को रोकने वाला प्रभावशाली व्यक्तित्व ही लौका के रूप में उभरकर आया है। हरिश्चंद्र के बारे में डॉ. सूरज प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है। ' डॉ. लाल का हरिश्चंद्र इंद्रो एवं विश्वामित्रों की परीक्षा लेने को उतारू है क्योंकि वह अयोध्या का राजा नहीं, अछूत लौका है। जो अहंग्रस्त सत्ता की सतरंज में गोटी बनाकर आगे पीछे सरकाया जा रहा है। '[71]

देवधर :

नाटक का प्रतिनायक है देवधर जो पूरे गांव को अपने अधिकार में रखना चाहता है। नीच जाति के लोगों के साथ अन्याय करता है, अत्याचार करता है। नीच लोगों का प्रतिनिधि लौका को सब खत्म कर देना या मिटा देना चाहता है। ' देवधर लौका को उस दंगे में झोंक देना चाहा था। पर यह न जाने कैसे बच गया। न जाने कैसी मेरी जलायी हुयी आग को बुझा देता है। अब मुझे कोई दूसरा उपाय करना होगा। '[72] हर बार लौका को मिटा देना चाहता है। गांव के लोग कहते हैं कि लौका क्रांती करना चाहता है तो देवधर कहता है कि क्रांती के लिये बड़ी ताकत चाहिये। मेरे पास बड़ी ताकत है, मैं कुछ भी कर सकता हूँ। देवधर को अपने सत्ता का अहंकार है। कहता है ये सारा इलाका मेरे ईशारों पर नाचता है। मेरी जन्मभूमि होने के कारण मुझे अपनी ताकत का इस्तेमाल नहीं करना पड़ा। राजनीति ने व्यक्ति को आजादी दी है। आज तक लोगों ने मुझसे जो कुछ भी मांगा, मैंने दिया, मैंने लोगों का कल्याण ही किया है। परंतु लौका जान-बूझकर हमारे इलाके में साम्प्रदायिक आग भडकाना चाहता है। वास्तव में साम्प्रदायिक आग लगाता है देवधर परंतु दोष लगाता है लौका पर। लौका को अधर्मी, नीच, शुद्र, भूखा, अज्ञानी आदि से अलंकृत करके लोगों को उसके खिलाफ भडकाता है। लोगों को कहता है उसकी जुबान कांट देनी चाहिये। उसके कान को पिघले शीशे और लाख से भर देना चाहिये। बहुत ही हालाहल भरा है देवधर के मन में लौका के बारे में। लौका जब हरिश्चंद्र का नाटक खेलने लगता है। देवधर बडा खुश हो जाता है। जीतन से कहता है कि यह बड़ा सुनहरा मौका है। नाटक के दरम्यान लौका की ओर से ऐसा वचन माँग लूँगा कि उसे भारी पड़ जायेगा। यह सारा संसार ही नाटक है, फसालो लौका को। लौका के बताने पर खुद इंद्र का रोल करता है। लौका को

अपना दुश्मन मानता है, उसे बरबाद कर देना चाहता है। एक योजना असफल हुई तो दूसरी योजना बनाता है। अपनी राजनीति में शक्ति है ऐसा लोगों को महसूस कराता है। आखिर में कहता है, ' सावधान। यह धर्म का नाटक है। सत्य की मर्यादा में रहो, नहीं तो भस्म हो जाओगे। सीधे नर्क जाओगे। '[73] लौका को मिटाकर ही दम लेना चाहता है। परंतु अब जनता भी सत्य को जान गयी है। देवधर तत्कालिन राजनीती परिस्थिती के एकाधिकार का प्रतीक है। आज का सत्ताधिश अपना विरोधी नहीं देख सकता, उसे नष्ट कर देना चाहता है। मिथकीय परिवेश में देवधर जैसा चरित्र पुराण से लेकर आधुनिक काल तक ज्यों का त्यों पाया जाता है। सभी की केवल ऊँचा ओहदा एकाधिकार, सत्ता आदि का लालच होता है। जिसमें लोगों का विनाश और अपना स्वार्थ केवल इतना ही बचा रहता है। हरिश्चंद्र नाटक को खेलनेवाले सभी लोगों ने आज तक भय, हिंसा और आतंक भोगा है, वही लोग देवधर पर झपटते हैं, उसपर वज्र की तरह टूट पडते हैं। देवधर बाबू को क्या बता था कि वह स्वयं जिस नाटक में इंद्र का अभिनय कर रहे हैं, वह सारा धर्म प्रतीक, पौराणिक घटना उन्ही पर इसतरह धटित हो जाएगी। देवधर के सारे दांवपेच असफल हो जाते हैं और सारी जनता उसी पर टूट पड़ती है। डॉ. लाल ने इनके पात्रों द्वारा मिथकीय परंपरा को उद्‌घाटित किया है। देवधर केवल अपना अधिकार जताकर अपने अधीन लोगों को करना चाहता है, शुरू शुरू में तो लोग उसी की मदद से उसी की खुशामत करके जीते हैं। परंतु लोगों को, लौका देवधर के असली रूप का पता कराता है और लोग भी देवधर के असली रूप को पहचान जाते हैं। लोग उसे अपना नेता मानने से इन्कार कर देते हैं और कहते हैं, आज से हमारे मालिक हम हैं। हम पर किसी का राज चले या हमें कोई लूटे यह हमें मंजूर नहीं। आज तक देवधर ने जितने अत्याचार लोगों पर किये लोगों ने सब सहन कर लिये, परंतु अब लोगों को सत्य का ज्ञान हो गया है, तो लोग उसे अपना नेता नहीं मानते। लौका को अपना नेता मानते हैं।

जीतन :

नाटक के अन्य पात्रों में से जीतन का चरित्र भी अत्यन्त प्रभावशाली रूप लेकर उभरा है। नाटक की शुरूआत में वह पूर्ण रूप से देवधर के सहयोगी के रूप में दिखाया है। लोगों को भी लोका के विरोध में भड़काता है - लौका लोगों को गुमराह कराना चाहता है, देवधर में आत्मगौरव है। आत्मज्ञान है तथा आत्मविश्वास है ये बातें लौका में नहीं है। ये बातें केवल ऊँचे जाति के लोगों में थी।

कहता है - ' इसके लिये भीतर आग चाहिये। मैं पता लगा रहा हूँ, वह आग सिर्फ ऊँची जाति के लोगों में है। नीचे के लोगों में यह आग हजारों साल पहले कुचलकर बुझा दी गयी है। समझे। '[74] यह बात कहनेवाला जीतन हरिश्चंद्र का नाटक खेलते समय विश्वामित्र का रोल करता है और उसे सत्य का ज्ञान होने लगता है। नाटक खेलते समय उसे देवधर मिल जाते हैं तो उनसे कहता है - ' ' जैसे जैसे विश्वामित्र के चरित्र में पैठता जा रहा हूँ, लगता है मैं अपने से आमने-सामने हो रहा हूँ। मैं क्या हूँ ? लोग क्या है ? आप क्या है ? इसे देखने लगता हूँ। '[75] देवधर से कहता है कि आप अपने आप को नहीं पहचानते, मैं आज तक सोचता रहा कि, सच जैसी कोई चीज नही है पर मेरा अनुभव कुछ और निकला। आज तक झूठ को सच मानता रहा, शक्तिशाली ही डरता रहा। तुमने और हमने मिलकर आज तक नाटक खेला सारी कथाएँ हमने बनायी, परंतु विश्वामित्र के रूप में उतरकर मैंने यह सत्य जान लिया है। अब सब लौकाभी साथ देंगे। लौका ही सच है तुम आज तक हमपर अधिकार जताते रहें। अब गांव के लोगों का राज होगा, देवधर के पक्ष में कोई नही रहेगा। हरिश्चंद्र का नाटक पुराण का था जो इन्द्र द्वारा बनाया गया पर राजा इन्द्र एक था, यहाँ राजा इन्द्र असंख्य है - पुलिस, अफसर, पूँजीपति, दलाल, गुण्डा ये सब आज के इन्द्र ही है। जो केवल राजनीति खेलते रहे। मेरी आखों की रोशनी नेमुझे सत्य अवगत कराया। तुम्हारे सत्ता की अंधःकार ने आज तक सत्य के प्रकाश छिपाये रखा। उसे अब मैं धीरे-धीरे उजाले में लाऊँगा। आज तक मेरी आँखे (देवधर) तुम्हारे सत्ता से अन्धी हो चुकी थी। लौका ने आकर उसे रोशनी दिखा दी। अब मैं सत्य और असत्य की पहचान करने के लिये समर्थ हो गया हूँ। अब सामान्य जनता को भी यही उजाला मिल गया है।

नाटक की नायिका शैव्या दरअसल देवधर के पक्ष में थी। परंतु उसे तो केवल धन से मतलब है। उसे यह सत्य, राजनीति, जाति-पाति भेद आदि से कोई मतलब नहीं। देवधर के हाथों का खिलौना है शैव्या याने मिस पद्मा। हरिश्चंद्र नाटक खेलते समय बीकती है तो उसी के आज्ञानुसार बर्ताव करती है। कहती है - ' भरसक सब कुछ करूँगी। फिर भी दण्ड से नहीं डरूँगी। मैं बिकी हूँ आप के हाथों, जो कुछ होता है, होगा अपके हाथों। '[76] काशी की पत्तुरियाँ के हाथों बिक गई है इसलिये उसके मत से रहती है। नाटक के अंत में देवधर के छल को जानकर कहती है, शाप और भय से आज तक लोगों को डराते रहे पर अब कुछ नहीं होनेवाला, सारे लोग सत्य से परिचित हो गये हैं और देवधर का राज भी समाप्त हो गया।

नाटक में रोहित एक ऐसा पात्र चित्रित किया है जो युवक है और सोचने की क्षमता है उसमें। पुराण के हरिश्चंद्र नाटक में रोहित एक बालक के रूप में प्रस्तुत किया था। विश्वामित्र रोहित को पूछते हैं कि क्या तुम्हें दानपर तथा सत्यपर विश्वास है तो वह नहीं कहता है और - ' मेरे लिए वह सत्य झूठ है, जिसके लिये जीवनभर केवल विपत्तियाँ झेलनी पड़े। त्याग और बलिदान की सूली पर चढ़कर सत्य पर सत्य की परीक्षा देनी पड़े। मेरे लिए सत्य वही है, जो सहज ही जीवन में जीया जा सके। जो जीया न जा सके वह झूठ है। वह धोखा है। '[77] सत्य को बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है रोहित। मनुष्य का अनुभव उसे राह दिखाता है। सच-झूठ की पहचान कराता है। इन्द्र के स्वर्ग को झूठा कहकर बताता है कि मुझ जैसे निष्पाप लोगों को कोई फूँक देता है, मिटा देता है। आधुनिक युवक की तडफ रोहित में दिखाई दी है

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ ने ठीक ही लिखा है - ' मिथक-प्रयोग की दृष्टि से ' एक सत्य हरिश्चंद्र ' आलोच्य अवधि का एक सशक्त नाटक है। इसमें डॉ. लाल ने सामयिक अफसर, नेता पूँजीपति, दलाल, गुण्डा आदि को इन्द्र की तरह शोषक रूप में चित्रीत करते हुए जनता को हरिश्चंद्र की तरह सत्य का परीक्षार्थी माना है। लेकिन यह भी नहीं होगा कि हरिश्चंद्र हमेशा सत्य की परीक्षा देता रहे और इंद्र का सिंहासन अमर रहे। '[78]

नाटक के पात्र हरिजन समस्या को उठाते हैं। देवधर कलियुग का इंद्र, लौका अहिंसक, सत्याग्रही, शक्तियों का प्रतीक। नाटक के अन्य पात्रों के माध्यम से नाटककार ने शक्तिशाली लोगोंद्वारा शोषित जनता का चित्र खींचा है। यह नाटक एक परम्परागत मिथक ही है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि -

1) आधुनिक नाट्यालोचन के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि नाटक में पात्र और चरित्र सृष्टि का महत्व निर्विवाद है। पात्रों के क्रिया-कलापों पर ही नाटक का सुन्दर भवन खड़ा हो जाता है।

2) साधारण नाटक और मिथक नाटक के पात्रों में काफी अंतर परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक या पौराणिक नाटकों के पात्र मिथक नाटकों में नाममात्र ही ऐतिहासिक या पौराणिक रहते हैं। वे मुख्यतः आज के जीवन सन्दर्भ में ही नाटककारों द्वारा चित्रित किये जाते हैं।

3) यद्यपि हिन्दी के ऐतिहासिक या पौराणिक नाटको की परंपरा प्राचीन है, फिर भी मिथक नाटकों का समुचित प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर काल के नाटककारों ने किया है - जिनमें जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा आदि प्रमुख है।

4) डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र मुख्यतः महाभारतकालीन, पुराणकालीन, तंत्रकालीन तथा महाभारतपुराणाभासित है।

5) डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र मुख्यतः आधुनिक जीवन सन्दर्भों को ही व्यक्त करते हैं। और पुराने मिथकों को नयी अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

6) डॉ. लाल ने प्रसंगवश पुराने मिथकों को तोड़ा-मरोड़ा है और उन पात्रों को नये साचे में ढ़ाल दिया है। मिस्टर अभिमन्यु और एक सत्य हरिश्चंद्र के पात्र इस दृष्टि में अपनी विशिष्ठता प्रकट करते हैं।

7) मनोविज्ञान के धरातल पर डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र आधुनिक मानव की मनोदशा और उसके खंडीत-व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में सक्षम है - प्रद्युम्न, वेनुरती (सूर्यमुख), हिरण्यकशिपु, (नरसिंह कथा), हेरूप (कलंकी), खंडीत व्यक्तित्व वाले आधुनिक पात्र है।

8) डॉ. लाल के मिथक नाटकों के पात्र जहां एक ओर आधुनिक जीवन सन्दर्भ से जुड़े हुए हैं, वहाँ दूसरी ओर कल्पनाशील भावभूमि के द्योतक है। इन पात्रों में डॉ. लाल का बौद्धिक प्रयास भी अपना महत्व रखता है और इसलिये ये पात्र आधुनिक युगबोध के परिचायक हैं।

अध्याय : 3

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1) हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण - डॉ. सूरजकान्त शर्मा, पृ. 94, प्र.संस्क. 1975

2) " वस्तु नेता रसस्तेषाम् भेदकः । " (1:11)
दशरूपककार धनंजय, प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस

3) अरस्तू का काव्यशास्त्र - अनु. डॉ. नगेंद्र और महेंद्र चतुर्वेदी, पृ. 36, प्र.संस्क. संवत 2014

4) " Characters Make Your Story " - Maren Elwood.
पृ. 2, संस्क. 1959

5) हिंदी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र-चित्रण - डॉ. सूरजकांत शर्मा, पृ. 109, प्र.संस्क. 1975

6) वही, पृ. 92.

7) वही, पृ. 132

8) कोणार्क, जगदीश चंद्र माथुर, पृ. 69, प्र.संस्क. 1973

9) पहला राजा : जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 31, प्र.संस्क. 1976

10) अंधा युग - धर्मवीर भारती, पृ. 74, प्र.संस्क.

11) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम, पृ. 70, प्र.संस्क. 1989.

12) वही, पृ. 127

13) वही, पृ. 129

14) वही, पृ. 132

15) वही, पृ. 75

16) सूर्यमुख, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 41, प्र.संस्क, 1977.

17) वही, पृ. 41.

18) वही, पृ. 70.

19) वही, पृ. 72

20) वही, पृ. 45

21) वही, पृ. 120

23) वही, पृ. 116

24) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में - डॉ. रीता कुमार, पृ. 78, प्र.संस्क. 1980.

25) सूर्यमुख, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 33, प्र.संस्क. 1977

26) वही, पृ. 31

27) वही, पृ. 35

28) वही, पृ. 99

29) यक्षप्रश्न - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 20, प्र.संस्क. 1976

30) वही, पृ. 31

31) वही, पृ. 52

32) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 176, प्र.संस्क, 1980

33) यक्षप्रश्न, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 25, प्र.संस्क. 1976.

34) वही, पृ. 37.

35) वही, पृ. 27.

36) वही, पृ. 44

37) वही, पृ. 36

38) वही, पृ. 45

39) वही, पृ. 26

40) वही, पृ. 47

41) वही, पृ. 47

42) नाटकार लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 175-176, प्र.संस्क. 1980

43) यक्षप्रश्न, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 79, प्र.संस्क. 1976

44) वही, पृ. 82.

45) नरसेंह कथा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 49, प्र.संस्क. 1987.

46) वही, पृ. 60

47) आधुनिक हिंदी नाटक : चरित्रसृष्टि के आयाम - डॉ. लक्ष्मीराय, पृ. 406, प्र.संस्क. 1979

48) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम, पृ. 95, प्र.संस्क. 1989

49) नरसिंह कथा, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 65, प्र.संस्क. 1987

50) वही, पृ. 72

51) वही, पृ. 63

52) कलंकी, - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 6, प्र.संस्क. 1969,

53) वही, पृ. 38-39

54) वही, पृ. 17

55) वही, पृ. 56

56) वही, पृ. 52

57) वही, पृ. 53-54

58) साठोत्तरी हिंदी नाटक - मूल्य अस्मिता की खोज - डॉ. विजयकांत धर दुबे , पृ. 58, प्र.संस्क. 1983

59) मिस्टर अभिमन्यु, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 20, प्र.संस्क. 1980,

60) वही, पृ. 27,

61) वही, पृ. 71

62) लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डॉ. दया शंकर शुक्ल, पृ. 109, प्र.संस्क. 1978

63) मिस्टर अभिमन्यु, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 144, प्र.संस्क. 1980

64) वही, पृ. 45-46

65) वही, पृ. 3

66) वही, पृ. 16

67) वही, पृ. 7

68) लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डॉ. दया शंकर शुक्ल, पृ. 151-152, प्र.संस्क.1978

69) एक सत्य हरिश्चंद्र, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 38, प्र.संस्क. 1976.

70) वही, पृ. 76.

71) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 172-173 प्र.संस्क. 1980.

72) एक सत्य हरिश्चंद्र, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 40, प्र.संस्क. 1976

73) एक सत्य हरिश्चंद्र, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 77, प्र.संस्क. 1976

74) वही, पृ. 20

75) वही, पृ. 41

76) वही, पृ. 69

77) वही, पृ. 37

78) साठोत्तरी हिंदी नाटक - सम्पा. विजयकांत धर दुबे, पृ. 18, प्र.संस्क. 1983.
(डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का लेख - हिंदी नाटक : सन् 60 के बाद)